मूल बंगला उपन्यास 'संकेत' का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक
हंसकुमार तिवारी

मूल्य छह रुपये ❖ पहला संस्करण 1973
DO AANKHEN (Bengali Novel), by Tarashankar Bandyopadhyaya
Rs.6.00

दो आँखें

तारांशकर वन्द्योपाध्याय



राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

कहानी मैं ही यानी उमानाथ मुखोपाध्याय कह रहा हूं, कहानीकार के नाते। यह उपन्यास है कि गद्य, था कि किसीकी कहानी, सो नहीं कह सकता। लेकिन नाम इसका रक्खा—सिगनल-संकेत। सिगनल-संकेत उपाख्यान कह सकते हैं, कहनेवाला मैं हूं। संकेत ही ठीक है। यह नाम मुझे उसीने वताया है, जिसकी कथा कह रहा हूं। परिचय के आरंभ में ही जिस चीज़ पर नज़र पड़ी, वह थी उसकी दो आंखें। अड़हूल के फूल जैसी सुर्ख! नहीं, लहू के दो ढेले हों जैसे। उनमें दो काली पुतलियों का आभास-भर जग रहा है।

गांव का मेरा घर कच्चा है। माटी की दीवार, फूस की छौनी। लेकिन देखने में खूबसूरत है, किसी भी सुरुचिसम्पन्न वंगले जैसा। सामने बगीचा। बगीचा भी सुन्दर हो उठा है। लोग ठिठक पड़ते हैं, देख जाते हैं। नीम के नीचे एक चौंतरा वंधा है, उसके चारों कोने के खूंटों पर पड़ी फूंस की छपरी देखने से किसी तपोवन या आश्रम-सा लगता है। मैं उसी नीम के पेड़ तले बैठा था। सामने के सदर रास्ते से जानेवालों का तांता। सभी बन्दोवस्ती दफ्तर के मुवक्किल। ठिठक जाते, देख लेते और चले जाते। उन्हींमें से सर पर अंगोछा डाले एक आदमी अंदर आया। लंवा-सा आदमी, खासे डील-डौल वाला। गोरा रंग। माथे पर अंगोछा पड़े रहने की वजह से ठीक-ठीक अंदाज़ नहीं लगा सका। लेकिन इसमें शक नहीं कि कई दिनों से दाढ़ी नहीं बनी थी और मूंछें थीं। पैरों में कटे टायर की सैंडिल। वदन पर घर की

धुली हाफ कमीज़, पहनावे में लाल लकीर कोर की साढ़े चार गज़वाली छोटी धोती।

ज़रा झुककर नमस्कार करते हुए बोला, श्यामापति बाबू हैं? श्यामापति मेरा भाई है। मैं उसे आज़ाद अमल का राय साहब कहता हूं। मुल्क के काम के पीछे ही पागल है। सरकारी कर्मचारियों से लाग-लगाव है। वे उसे कुछ पागल कहते हैं। बहुतेरे उससे बिगड़े भी रहते हैं। लोगों के हज़ारों झंझट-झमेले लेकर वह उनके पास जाता है, काम निकाल देता है। भाई के नाते नहीं—भगवान को मैं मानता हूं, उनका हलफ लेकर कह सकता हूं, इसमें वह अपना कोई स्वार्थ नहीं साधता। कागज़-कलम पर दखल होता, दिमाग थोड़ा ठंडा होता और खोपड़ी में थोड़ी-सी अक्ल होती, तो ऊंचे उठ सकता था। डांड़ सम्हालने की ताकत बाजुओं में है, पेशियां उसकी सख्त हैं, लेकिन अक्ल का सीधा है, इसलिए बंदरगाह में नावों की भीड़ को ठेलते हुए आड़े-टेढ़े जाकर किनारे नहीं लग सका। उसकी जमात के अधिकारी नेह से ही उसे दुर्वासा कहा करते हैं। दुर्वासा नाम उसका ठीक ही रक्खा है लोगों ने—वह जैसा कटु बोलता है, वैसा ही फूस जैसा चरित्र है। आग के छूते ही लहक उठता है। खैर, उसकी बात छोड़िए। आगंतुक उसीको खोज रहा था। मैंने कहा, अभी-अभी तो था, कहां चला गया। बैठिए, आ जाएगा।

लोहे की कई कुर्सियां पड़ी थीं; मैंने इशारे से दिखा दीं। वह बैठा नहीं। बोला, आप उमानाथ बाबू हैं?

मैंने कहा, हां।

उसने नमस्कार करके कहा, आज मेरी खुशनसीबी है। आपके दर्शन हुए। देखने की ललक ज़माने से थी।—कहते हुए नीम तले पक्के की एक अलग कुर्सी पर बैठते हुए उसने सर के अंगोछे को हटाया।

अब उसकी आंखों पर नज़र पड़ी! लहू के दो ढेले—काली पुतलियों का आभास-भर दिख रहा था, वरना समझता कि अंधा है। मैंने पूछा, आपकी आंखों में क्या हुआ है? इतनी लाल हैं! सिहर उठा।

थिर निगाह से मेरी तरफ ताकते हुए वह हंसा। बोला, आप सिहर उठे ?

—हां, सिहर उठा। क्या हुआ है ? आंख आई हैं ?

—जी नहीं। वह सब कुछ नहीं। आप भांप नहीं सके, यह सिगनल है !

—सिगनल ? काहे का सिगनल ?

—रेड सिगनल।

—रेड ! आप राजनीति करते हैं ?

—करता था। अब नहीं करता। कम्युनिस्ट, कांग्रेसी—कुछ नहीं। आदमी हूं, बस। ये आंखें मेरे निजी सिगनल हैं, लोगों से कहती हैं, करीब मत आओ।

उसकी बात में दंभ है कि रूढ़ता, समझ नहीं पाया। तीखी नज़र से उसकी तरफ ताकता रह गया। मेरी ओर देखकर लमहे में वह एक और ही आदमी हो गया। थका, हारा, विनम्र एक आदमी ! गला धीमा हो आया—आवाज़ में पीड़ा या आक्षेप फूट उठा। बोला, किसे क्या कहना चाहिए, सब समय ठीक नहीं रह पाता। सर में एक पीड़ा-सी होती है, वह मानो सब कुछ को विषैला बना देती है। आपको कितनी जो श्रद्धा करता हूं—देखिए, आपसे ही यह कह बैठा !

अफसोस की उदासी-भरी एक हंसी उसके होंठों पर फूट पड़ी। फिर हैरानी महसूस हुई—पत्थर पर खुदी एक सख्त अदा-सा उसका मुखड़ा उस मामूली हंसी से सिर्फ प्रसन्न और कोमल ही नहीं, सुन्दर भी हो उठा। शायद इसलिए कि दांत उसके मोती की पांत-से खूबसूरत थे। झकझक कर रहे थे।

सोचने लगा। उसने कहा, पानी पीता ज़रा।

मैंने कहा, बेशक। धूप में आए हैं। अरे ओ धीरेन, ज़रा इन्हें पानी ला दे भैया। उसके बाद पूछा, आ कहां से रहे हैं ?

घाट बलरामपुर से—हंसकर बोला, दूरी खास नहीं है, सर्दियों के दिन

हैं, धूप भी कड़ी नहीं। गर्मियों की दोपहरी में छप्पर-छाया है। इस वजह से नहीं। मुझे प्यास लगती ही बहुत ज्यादा है। पहले नहीं लगती थी। आंख की इस बीमारी के बाद से ऐसा हुआ है।

एक तश्तरी में दो मिठाइयां और एक गिलास पानी लाकर धीरेन ने मेरे सामने की मेज़ पर रख दिया।

मिठाई ? मैं सिर्फ पानी पी लेता हूं।

मैंने कहा, यह मेरी स्त्री की पूजा का प्रसाद है और उनकी गिरस्ती का नियम है।

ज़रा चुप रहकर वह बोला, जी, मिठाई मैं नहीं खाता।

—मिठाई नहीं खाते हैं ?

—नहीं। नीम की पत्ती खाता हूं—नीम का फल चूंकि मीठा होता है, इसलिए ज़बान पर भी नहीं रखता। उसने मेरे नौकर की तरफ मुड़कर कहा, मूढ़ी हो, तो थोड़ी-सी ले आओ।

शांत और नम्र स्वर कब सख्त हो आया था, पता नहीं। अंतिम कहे शब्दों से पता चला। फिर अचरज से उसकी ओर ताका।

मेरी स्त्री बरामदे में भागवत-पाठ कर रही थीं। वह भी हैरान होकर उठ आईं। कहा, नहीं खाएंगे ? क्यों ? कोई व्रत-व्रत ?

—जी नहीं। यों ही नहीं खाता। मामूली आदमी हूं, मामूली काम करता हूं।

मैंने पूछा, क्या करते हैं ?

—करता हूं ? पाठशाला चलाता था। सो उठ गई। अब माटी काटता हूं, हल भी चलाता हूं। सरकारी रिलीफ में रोज़ मजूरे का भी काम करता हूं। और जाल बुनकर भी बेचता हूं।

—आप जाल बुन लेते हैं ?

—जाल डाल भी सकता हूं।

शांत और मौन हंसी से मुखड़ा भर गया। हंसने से वह सुन्दर दीखता है। अबकी वह और भी सुन्दर हो उठा। क्योंकि इस बार की

हंसी प्रशांत थी।

मेरी स्त्री इतने में अंदर से एक गिलास दूध ले आई—पीजिए।

—दूध ?

—जी। इसमें तो ना करने से नहीं चलेगा।

—नहीं-नहीं। मेरे घर में गाय है। खुद ही उसकी सेवा करता हूं, घास काट लाता हूं। सानी-पानी लगाता हूं। घर में हम दो प्राणी हैं। वह और मैं। दूध मैं पीता हूं। लाइए।

गिलास का सारा दूध पीकर पानी का गिलास उठाकर चुल्लू से पानी पिया और मुंह-हाथ धोकर गिलास को रख दिया। उसके बाद तृप्ति की 'आ:' करके बोला—पिछली जो बड़ी बाढ़ आई थी, समझे ? तीन दिन तक एक छप्पर पर बैठा रह गया था—बिना अन्न, बिना पानी। और मेरी सुरभी—गिरे हुए एक घर की माटी पर। तीन दिन तक उसीके थन में मुंह लगाकर दूध पिया किया। चारों तरफ पानी ही पानी, कल-कल करती जलराशि बह रही है, मगर पीने को एक बूंद नहीं। कदोर पानी। उस दूध में ही पानी मिला, भोजन मिला। पानी तीन दिन के बाद उतरा। गांव के, आसपास के गांव के बंधु—मैं तब वामपंथी था बाबू, कट्टर वामपंथी। किसीने खोज नहीं ली। सबसे पहले खोज ली श्यामापति बाबू ने—दो कोस दूर से पानी-कीचड़ झेलकर।

मेरा घर गांव के शुरू में ही है। इन्होंने जाकर आवाज दी—गुसाईं जी ! उस दिन मैंने माटी के नीचे से पुआल की एक आंटी निकालकर धो-सुखाकर गैया को खिलाई थी। उसका बच्चा बाढ़ में बह गया था। थन में दूध जमकर टनटना उठा था—वह हंवा-हंवा करके मेरे बछड़े को पुकार रही थी। मेरा पेट जल रहा था, गला सूख गया था—[illegible] था। ऐन वक्त पर पुकार सुनकर माथे में दर्द में [illegible] अच्छा भी लगा बाबूजी—कोई खोज [illegible] देख रहा है, जिंदा है कि नहीं। मैंने पूछा—कौन ? [illegible] पति। नवग्राम से आया हूं। मैं निकला, तब तक [illegible]

कीचड़-पानी से कपड़ों की गत बन गई थी। मोटे आदमी, हांफ रहे थे। बैठे ही बैठे पूछा, गांव के लोगों की क्या खबर है? मैंने कहा, सो तो नहीं जानता मगर मैंने तीन दिन छप्पर के ऊपर बिताए हैं। उन्होंने अपनी पानी की बोतल से थोड़ा-सा पानी पिया। उनके हाथ को पकड़कर रोकते हुए मैंने कहा, आप यह दूध पी लीजिए। भले आदमी हैं, भले आदमी के लड़के हैं, नामी आदमी के भाई हैं—मेरे घर आए हैं, यह थोड़ा-सा दूध आप पी लीजिए। उन्होंने मेरा हाथ थामकर कहा, भाई गुसाईं, तुम वह दूध पिओ, मैं देखूं। हम लोग तो बाढ़ के सताए हुए नहीं हैं। हम लोग तो भला-बुरा जैसा खाते हैं, खाते रहे हैं। तुम लोग उपवास किए रहे। तुम पिओ। मैं बड़ी-बड़ी मुश्किल से यहां आ पाया हूं। साथ कुछ ला नहीं सका, लेकिन सामान आ रहा है। चावल, दाल, बिस्कुट, डब्बे का दूध कुछ जुटाया है—जीप पर आ रहा है। मैं तड़के ही निकला हूं। वे लोग घंटे-भर में आ पहुंचेंगे। समझे, दूध मैंने पी लिया। और सुरभी का दूध पीकर भरे हुए पेट से मैंने मन ही मन कहा, अब से वामपंथी-वंथी नहीं। आदमी, मैं बस आदमी हूं। मैं आदमी को प्यार करना चाहता हूं, नहीं कर पाता, बस दो-चार जने को। लेकिन दो-चार जने भी मुझे प्यार नहीं करते। एकाध जने करते हैं और करती है मेरी सुरभी।

मेरी सारी स्नायु-शिराओं से लहू का प्रवाह बह रहा था—मैं अपलक आंखों उसकी ओर ताक रहा था। गुसाईं? गोस्वामी? घाट बलरामपुर का नारायण गोस्वामी? कोई खूनी गुसाईं कहता है। कोई दानो गुसाईं कहता है, कोई कहता है असुर। मैंने बहुतों से कहानी सुनी है, बहुत तरह की। मेरे लिए अजीब आश्चर्यजनक आदमी है। मुझमें अगर नया महाभारत लिखने की शक्ति होती, तो उस महाभारत में एक उपाख्यान होता—नारायण गोस्वामी उपाख्यान। उसका नायक होता नारायण गोस्वामी। इतिहास के हजार या पांच सौ साल पहले भी पैदा हुआ होता, तो शायद हो कि एक वंश ही चला सकता वह।

मैंने उठकर दोनों हाथों से पकड़कर उसे छाती से लगा लिया। तुम

नारायण हो, मैं तुम्हें पहचान नहीं सका। मैंने इसके पहले दो-तीन बार तुम्हें बुलवा पठाया था, तुम नहीं आए।

वह घबरा गया था—बार-बार धीमे से बोला, बाबू—बाबू। मैं—मैं। मुझे छोड़ दीजिए। बाबू।

मैंने कहा, बाबू नहीं, बल्कि भैया कहो।

भैया?

हां। भैया।

तो फिर छोड़िए। प्रणाम करूं।

प्रणाम लिया। अपने को धन्य माना। नारायण गोस्वामी मामूली-सा आदमी मामूली तो नहीं। असामान्य है। बंगाल के सचिवालय में विश्वबंधु एक उपसचिव है। उससे मैंने इसके बारे में सुना है। बंगाल की विधानसभा के सदस्य प्रमोद बाबू से सुना है।

नारायण ने कहा, नहीं भैया, मैं कंटीली झाड़ी हूं। मैं मरता नहीं। जला देने से फिर जनम जाता हूं, काटने से उग आता हूं। अमृत-बमृत नहीं जानता। अमर कहें, तो कहूंगा नहीं। लेकिन मेरी मौत नहीं। अपने ही कांटों की जलन से मैं भी जलता हूं। यह देखिए, कंधे की हड्डी उठी हुई है। मुझे मारा था। और भी निशान है। यह देखिए, कपाल में मांस उभरा हुआ है। एक बार खुद ही पत्थर से ठोंका था, माथे के दर्द से भी, जलन से भी कहिए।

नारायण ने शांत और प्रसन्न गले से कहा।

देर तक दोनों चुप बैठे रहे। उसके बाद मैंने कहा, किधर को आना हुआ है भाई, इस बार तो मैंने नहीं बुलवा भेजा है—और, मैं भी महज़ कल ही आया हूं। एकबारगी अचानक आ पड़ा हूं।

—बंदोबस्ती के दफ्तर में कुछ काम है भैया। थोड़ी-सी, दसेक कट्ठा ज़मीन है मेरी, नदी के किनारे। उसीके लिए भूतू चटर्जी के लड़कों ने टंटा खड़ा किया है। उस ज़मीन पर भूतू चटर्जी का खून हुआ था। मगर वह ज़मीन तो मैं नहीं दे सकता। इसीके लिए श्यामापति बाबू के पास

आया हूं—बंदोबस्ती दफ्तर में कागज-पत्तर दिखाकर वे अगर इस झूठे झगड़े को खत्म कर दें। उन्होंने कहा है निवटा देंगे। मैं समझता, नहीं, कर नहीं सकता, सो नहीं। लेकिन···

नारायण चुप हो गया। वह धीर आदमी अस्थिर हो उठने लगा। चेहरा पत्थर जैसा सख्त हो उठा। मैं समझ रहा था, वह दांत पीसे हुए है, दोनों होंठ आपस में जोरों से जुड़ गए हैं। जबड़े की दोनों हड्डियां चमड़ा ढके दो बोल्टू जैसी लग रही थीं। अपने निष्ठुर क्षोभ को कठोर और सख्त शक्ति से नट के सहारे बोल्टू कसकर रखे हुए है।

मैंने कुछ कहा नहीं। आज के आदमी के क्षोभ को मैं जानता हूं। राजनैतिक शक्ति से प्रतिष्ठित कांग्रेस का सदस्य हूं मैं—लेकिन उससे भी पहले और उससे भी बड़ा सत्य यह है कि मैं साहित्यिक हूं। इसे कैसे इनकार कर सकता हूं।

और यह यकीन करता हूं—नारायण आज वामपंथी भी नहीं, दक्षिणपंथी भी नहीं। वह जो कह रहा है, सत्य है। वह आदमी है। शायद हो कि जो जलन उसकी छाती में है, जो क्षोभ उसके अंतर में है, उससे दक्षिणपंथी कांग्रेस का संपर्क ही सब कुछ नहीं। शायद हो कि वामपंथ छोड़ देने के बावजूद उसके मन में अभी भी उसका प्रभाव है। और नारायण का क्षोभ शायद हो कि नारायण का क्षोभ हो। उससे दूसरे आदमी का कोई वास्ता नहीं। तो भी, पुराण में है—कोई-कोई आदमी तमाम ज़िंदगी अग्निदाह में जलता है और भगवान को सरापता है। उसकी सृष्टि को सरापता है। अपने जीवन की ज्वाला को दुनिया-भर में बिखेर जाता है। मैं देख पा रहा था, दोनों आंखों से नारायण की वह ज्वाला अविराम निकल रही थी।

नारायण ने झूठ नहीं कहा, वे आंखें रेड सिगनल ही हैं। लहू के ढेलों में काली दो पुतलियों के आभास से लगता है, लाल कांच के पीछे जो रोशनी जलती है, वे दोनों वही रोशनी हैं।

२

—नहीं भैया ! नारायण का उपाख्यान नहीं। नारायण को भूल जाइए।

—फिर किसका उपाख्यान ? तुम्हीं बताओ।—मैंने नारायण से कहा।

हंसकर वह बोला, दुखीराम का उपाख्यान। मां-बाप ने नाम रक्खा था नारायण, लेकिन असल में वह दुखीराम है। संसार में दुखीरामों का अंत नहीं। करोड़ों करोड़ दुखीराम हैं, असंख्य करोड़ दुखीराम। सुख-सुख करके भीड़ लगाए दौड़ता है। आपस में मार-पीट, छीना-झपटी करता है। एक दल दूसरे को पैरों से रौंदकर निकल जाता है। ठोकर खाकर गिरता है। मरता है। इन्हींमें दो-चार ऐसे दुखीराम होते हैं भैया, जिनकी मौत नहीं होती कवै मछली जैसी जान होती है।

ज़रा रुककर बोला, कहां से जो वह इतनी शक्ति पाता है, नहीं कह सकता।

घाट बलरामपुर में गुसाईं के घर एक लड़का पैदा हुआ था। हरि गुसाईं के एक लड़की, एक लड़का। हरि गुसाईं ससुराल में बस गया था। ससुर के दो लड़कियां थीं, बड़ी लड़की हरि गुसाईं से व्याही थी। उसीको ससुर ने अपने घर रखा था। छोटी लड़की की शादी एक पोस्टमास्टर से कर दी थी, उसका घर शहर कलकत्ता के पास था। रुपया देकर व्याह कराया था। वह बेटी-जमाई वहां रहते थे। धीरे-धीरे गांव के लोग उन्हें भूल ही गए थे। हरि गुसाईं ने अपनी बेटी का व्याह तीन-चार कोस के

फासले पर किया था। दामाद शहर में एक मुख्तार का मुहर्रिर था। खेती-बाड़ी की गिरस्ती। नारायण का असल नाम दुखीराम, मैं भगवान नहीं मानता, मगर भगवान के सिवाय और किसका दिया हुआ नाम कहूं ? हां, यों कह सकता हूं, बाघों में जैसे चीता बाघ होता है गुलबग्घ होता है, धारीदार बाघ होता है, वैसे ही आदमियों में दुखीराम है, सुखीराम है, और भी शायद बहुत-बहुत हैं। नारायण की जात दुखीराम की है। हुआ भी ठीक वही। हठात् बाप चल बसा। मां गुजर गई। नारायण की उम्र तब आठेक साल की थी। बस, नारायण जाता रहा, दुखीराम हो गया।

दुनिया में अपना कहने को बहन-बहनोई—और, दूर के मौसी-मौसा। मौसी-मौसा ने शायद चिट्ठी लिखकर खोज-पूछ की थी—तब उड़ीसा के पास मेदिनीपुर में रहता था। बहन-बहनोई आकर नारायण को लिवा ले गए। तब वह दुखीराम हो चुका था।

यह उपाख्यान दुखीराम का है। अनेक दुखीरामों में से एक दुखीराम।

बहनोई रामहृदय कई महीनों के बाद उस दिन शुक्रवार को शहर से घर आया था। कुछ दिनों तक घर में रहा था। दो मील की दूरी पर एक बस-पड़ाव है। वहां से पैदल आता है। शनिवार की शाम को आता है, सोमवार को सवेरे उठकर चला जाता है। बोझा ज़्यादा रहने से कुली लाता है, वरना रामहृदय खुद ही ले आता है। सर्दियों की शुरुआत थी, उस रोज़ वह एक टोकरी गोभी ले आया था। शनि और रविवार को सवेरे बस्ती में गोभियां बेचेगा। पांच रुपये के सामान में कम से कम सात रुपये होंगे। हिसाबी आदमी है।

नारायण दुखीराम की दीदी लक्ष्मी दरवाज़े पर खड़ी शंकित मन से पड़ोसी शिबू भल्ला से कह रही थी, शिबू, तुम ज़रा जाओ भैया, मियां से जाकर कहो, अब कभी ऐसा न होगा। नारायण को साथ लेते जाओ। आज के लिए छोड़ देने को कहो।

आठ साल का नारायण ओसारे पर एक ढिबरी के सामने किताब खोले बैठा था। प्रथम भाग। पास में थोड़ी-सी माटी रखी थी। बात यह थी

कि वह एक खिलौना बना रहा था।

रामहृदय ठिठक गया। बोला, क्या बात है, क्या हुआ ?

—गैया।

—गैया क्या ? गैया ?

—चरवाहे छोरे ने गैया को देखा नहीं। कुछ गायें दल से छिटककर नदी किनारे मियां लोगों के सब्जी के खेत में जा घुसीं। उन लोगों ने गैया को पकड़ रक्खा है।

रामहृदय ने कुली से कहा, उतार। यह ले।—कहकर उसे एक दुअन्नी थमा दी। कुली ने कहा, दुअन्नी क्यों साहब ?

दोनों हाथ मटकाकर रामहृदय ने कहा, तो क्या दो रुपये चाहिए साहब ! कुल आध घंटे का तो रास्ता है। दिन-भर आठ घंटे मशक्कत करने पर मजूरी के आठ आने मिलते हैं। तो, आध घंटे का कितना होता है ? अधन्नी यानी दो पैसे। उसकी जगह मैंने दो आने दिए। और क्या दें ? जा।

और, ओसारे की तरफ ताकते ही नारायण पर नज़र पड़ी। बोला, ऐ ! अबे ऐ सूअर, नरैना !

नारायण चौंक उठा, ऐं !

रामहृदय उसके करीब गया—हो क्या रहा है ?

—पढ़ रहा हूं।

—पढ़ रहा है ! पढ़ना नहीं होगा, यहां आ।

—ऐं !

—मेरे साथ आ। गैया को लाना है।

—मेरी पढ़ाई जो बाकी है। कल गुरुजी पीटेंगे !

हृदय ने कान पकड़कर उसे उठाया और कहा, आज मैं जो पीटूंगा रे। सूअर का बच्चा ! चल ! हूं:, पढ़कर तो हाईकोर्ट का जज होगा ! उठ !

मियां के यहां से गैयों को छुड़ाकर उस रात नारायण ही उन्हें बड़ी

कुशलता से हंकाकर घर ले आया था।

दूसरे दिन सवेरे तम्बाकू लेकर ओसारे पर बैठने से पहले हृदय ने स्त्री को पुकारा—बलरामपुर वाली !

लक्ष्मी चूल्हा सुलगा रही थी। हृदय के लिए चाय बनानी थी। नारायण हाथ-मुंह धोकर मूढ़ी के लिए बैठा था। खाकर पाठशाला जाएगा। लक्ष्मी घर से निकलकर सामने आ खड़ी हुई, मुझे पुकार रहे थे ?

—तुझे नहीं तो क्या पराई स्त्री को पुकारूंगा ?

लक्ष्मी हृदय से डरती है। हृदय हृदयहीन है। वह लक्ष्मी को पीटता है। इसके लिए उसे कोई संकोच नहीं, शर्म भी नहीं। वह ऊंचे गले से कहता, पीटता हूं, ठीक करता हूं। अपनी स्त्री को पीटता हूं। दूसरे के बदन पर हाथ रखूं तो नालिश करना। या कि मुझसे मार-पीट करना।

उसकी बात पर लक्ष्मी ने हंसकर ही कहा था, सुबह-सुबह बातों का ढंग देखो जरा ! दूसरे की स्त्री को पुकारने से लाठी लिए आयान घोष जो खदेड़ेगा।

उसके हाथ में चिलम देकर बोला, सवेरे-सवेरे मुंह में आग देने को कह रहा हूं। चिलम में आग ले आ। और गोभियों को देख। जो कुछ-कुछ मुरझा गए हैं, उन्हें एक अलग टोकरी में सहेज दे। एक काम और करना। हरेक से एक-दो फूल तोड़ लेना। दस गोभियों से एक निकल आएगी। दो-तीन करके पत्ते तोड़ ले।

लक्ष्मी ने कहा, बाप रे !

—हूं। 'बाप रे' की ही बात है। जो कह रहा हूं, वही कर। और नरेना कहां है ? गोभी की टोकरी लेकर वह मेरे साथ जाएगा। उसे काली-थान में बिठलाकर मैं खड़ा-खड़ा गोभियां बेचूंगा।

—वह पाठशाला नहीं जाएगा ?—दुखी होकर वह धीमे से बोली।

—पाठशाला ? नहीं। पाठशाला जाकर क्या होगा ?

लक्ष्मी अंदर गई। जाकर नारायण से कहा, आज तुझे पाठशाला नहीं

जाना होगा।

नारायण खुश हो गया, नहीं जाना होगा ?

--नहीं। अपने जीजा जी के साथ गोभी बेचने जाना, हां।

नारायण और भी खुश हो गया।

लक्ष्मी ने लेकिन अपने को अपराधी अनुभव किया। बोली, नहीं तो कुछ गोभियां बिलकुल खराब हो जाएंगी। आज घर में गोभी की तरकारी बनेगी। चल, मेरे साथ गोभियां बीनना।

नारायण ने पल में महसूस किया कि वह बहुत बड़ा काम का आदमी बन गया है। और गोभियों के फूल और पत्ते तोड़ने का काम उसने खासी निपुणता के साथ कर लिया था—मतलब कि लक्ष्मी के बजाय। लक्ष्मी सोच रही थी, डर रही थी कि यों तोड़ लेने की चोरी-मक्कारी खरीदारों के आगे पकड़ी जाएगी। नारायण को इसकी फिकर नहीं थी। इसके सिवा उसके हाथों एक सहज निपुणता भी थी।

गोभियां बेचकर लौटने के बाद उस रोज़ हृदय खुश हुआ था। बोला, छोरा चालाक है। एक ने एक गोभी खरीदी और एक पर हाथ साफ कर रहा था—इसने पकड़ लिया।

इसी वक्त चरवाहा गायों को ले जाने के लिए आया।

हृदय ने उसे पिछले दिन की घटना के लिए फटकारा—जाः, तुझे अब मेरी गायें नहीं चरानी, जा।

और उसने आवाज़ दी, नरैना, सुन।

नारायण धोती के छोर में मूढ़ी-प्याज़ और मुट्ठी में मिर्च लिए बगल के भल्ला टोले में जाने की तैयारी कर रहा था। भल्ला टोला नारायण को बड़ा भला लगता। भल्लों का पेशा खेती है। सब्ज़ियां उपजाने में भल्ले गज़ब के हैं। उसके साथ वे लोग कसरत करते हैं। लठैती उनका खानदानी नशा है। धूमधाम से होनेवाली शादियों में वे लोग 'रायबेंसे' नाचते हैं। कसरत दिखाते हैं। गीत भी गाते हैं। उन सबके अभावों का अंत नहीं। लेकिन गज़ब के हैं वे, गजब की है उनकी सहन-शक्ति। उतने अभावों में भी

वे रोते नहीं, अपना दुखड़ा नहीं गाते फिरते, उसी हालत में हंसते हैं। हो-हा करके हंसते हैं। किसी जमाने में वे डकैत थे। उनमें कुछ दागी लोग भी हैं। नारायण किस्से सुनाता है, अजीब-अजीब किस्से।

भूत की कहिए तो हो-हो हंस पड़ता है। राम भल्ला की एक कहानी उसे आज भी याद है। भल्लों के यहां पहले वही कहानी सुनकर वह आकृष्ट हुआ था। कहानी चुड़ैल की हो रही थी। राम ने कहा था, दसेक साल पहले एक चुड़ैल दिखाई पड़ी। नदी किनारे के लोग कहने लगे, चुड़ैलों की एक जोड़ी निकला करती है। चुड़ैल मैं देख चुका था। पहले एक बार पकड़ चुका था। नदी के किनारे-किनारे आती थी। आया करती थी उस दंडेश्वर थान से। दप्-दप् करके जलती हुई आया करती और आकर भोग-पुर के जोगिन तले घुस जाया करती थी। लोग कहा करते थे, उस टोले के डोम की बेटी कामिनी कपड़े में आग लग जाने से जल मरी थी—यह चुड़ैल वही है। मैंने सोचा, एक दिन देखूंगा। किसी-किसीने शायद दूर से देखा भी था। जोगिन तले का संन्यासी कहता था, सारे बदन की खाल उखड़ी हुई है—सफेद कोढ़ हो जैसे। सिर के बाल झुलसे हुए। बड़ा खौफनाक है। मुझे डर भी लगता और फिर देखने की बड़ी इच्छा भी होती। क्या हो? और आखिर एक दिन जो होना होगा सो होगा, सोचकर रात को नदी किनारे जा धमका—हाथ में लाठी लिए बैठ गया। कसकर पी ली, कि हठात् दंडेश्वर थान में दप् से रोशनी-सी जल उठी। बुझ गई। मेरी छाती जोर से धड़क उठी। जी में आया, दौड़कर भाग जाऊं। लेकिन तुरन्त अपने को डांट बताई, खबरदार, रामा! उसके बाद वह आने लगी। अंधेरे में दिखाई तो नहीं पड़ता था, अचानक देखा, रस्सी-भर के फासले पर फिर दप्! अबकी दप्-दप् करके कोई तीनेक बार। फिर अंधेरा। फिर रस्सी-भर की दूरी पर। देखते-देखते और करीब। दप् से जलते ही मैंने देखा, सफेद मूर्ति। उस समय मुझमें 'मैं' नहीं रह गया। लेकिन तुरत कपड़ा-सा नजर आया। हां, कपड़ा। फिर दप्। इस बार पूरी शकल दिखाई दी। हाथ-पांव। माथे पर रोशनी जल रही है। हैं! तनकर मैं खड़ा हो गया। पुकारा—कौन?

ऐं !—वह चीख उठी ।

मैं तब तक ताड़ गया । लाठी लिए सामने जा खड़ा हुआ । कहा, लगा दूंगा दो-एक लाठी । माथे का ढकना फेंक, फेंक दे ।

वह चुपचाप खड़ी हो गई । मैं आगे वढ़ा, कौन है ? है कौन तू ?

चुप्प । घूंघट काढ़ लिया । मैंने खींचकर घूंघट हटा दिया । वह औरत मेरे पैरों पर पछाड़ खाकर गिरी, तुम मेरे वाप हो !

मैं नशे में था, तिसपर उस समय भरी जवानी थी । फिर भी पीछे हट आया । कहा, करती क्या हो विटिया । तुम ब्राह्मण की वेटी हो । तुम्हारे पिता की मैं गुरु जैसी भक्ति करता हूं ! उठो, उठ जाओ । लेकिन यह कैसी हरकत वेटी !

हरकत वही थी—ब्राह्मण की विधवा वेटी, जोगिन तले के संन्यासी के पास रात को जाया करती थी । संयासी ने कहा, मैं क्या करूं, कहो । मैं मना करता हूं । मगर वह सुनती नहीं ।

मैंने कहा, सो सव नहीं होगा । तुम उसे भैरवी वनाकर अपने साथ ले जाओ । और सुनो, यदि ब्राह्मण की यह लड़की कभी आकर यह कहे कि तुम इसे छोड़कर चंपत हो गए, तो मैं सारे ब्रह्मांड में खोजकर तुम्हारा सर कुचल डालूंगा । आज ही रात चलो, मैं तुम लोगों को जंक्शन में गाड़ी पर चढ़ा आता हूं । और मैंने वही किया ।

और इस वार एक नहीं, दो-दो चुड़ैल ! समझा ? समझ गया, तमाशा खूब जमाया है । दोनों अपने-अपने माथे पर आग के ढकने रखकर नाचतीं, लीला करतीं । मैं रात को निकल पड़ा । संदेह हुआ, मामला संगीन है । गर्ज़ कि रात-रात-भर दौड़-धूप करती हैं । अपने साथ अविनाश को लिया । छोकरा मज़वूत था । दोनों मिलकर गए । देखा, जैसे साइकिल से हनहनाते हुए कोई जाता हो, दप्-दप् करती हुई रोशनी दौड़ी आ रही है । कभी-कभी एक ही जगह चक्कर काटती है । माजरा क्या है ? अविनाश एक वार वू-वू कर उठा । मैंने कहा, अवे ऐ ! खाक ऐ ! छोकरा तव तक पीछे मुड़ चुका था । दे दौड़ । मैंने सोचा, जा साले । जाना ही ठीक है । जाने कहां

गश खाकर गिर पड़े। मुसीबत होगी। जाना ही ठीक है। मैं पा-पां करके नदी किनारे की सरपत की झाड़ियों की आड़ से उन्हींकी तरफ बढ़ा। मगर कहां गायब हो गए, पता नहीं। कि तुरत समझ गए, चारेक हाथ की दूरी पर दप् से रोशनी जल उठी। चौंक उठा। हाय मेरे बाप! ये तो चौपाये हैं! कुत्ते जैसे। हो सो हो, सोचकर मैंने जमाई लाठी—जय काली मैया की। चें से चीखकर गिर पड़ा। दूसरा तब तक हे-हे करके मेरी ओर लपका। वह जितना ही हे-हे करता, उतनी ही दप-दप् करके रोशनी जलती। मैंने लाठी उठाकर फिर दे मारी। इस बार लेकिन लगी नहीं। दूसरा भाग गया। जो गिर पड़ा था, उसे खींच लाया। नमक डालकर चमड़े को मोची के यहां भेजा। स्यार था। एक जात का स्यार।

अजीब लगता। नारायण दुखीराम को इन किस्सों में सुख का गजब का स्वाद मिलता। शायद खुद उन मल्लों से भी ज्यादा। इसीलिए मौका मिलते ही वह भल्ला टोले में जाया करता।

उस दिन भी नारायण वहीं जा रहा था। बहुत बड़ा हुक्का लिए राम भल्ला बकुल तले बंधी उनके देवी-देवताओं की वेदी के सामने चटाई पर बैठा या तो लाठी बनाता होता, या जाल बुनता होता या कि शरीर ठीक नहीं, इसलिए डंड-बैठक करता होता या, कि कोई जवान दोनों हाथों को मुट्ठी बांधकर गमागम मुक्का मारता होता। औरतें उपले पाथती होतीं, पैरों से पसारती हुई धान सुखाती होतीं, ढेकी में धान कूटती होती, कम उम्र की लड़कियां लकड़ी बीनने के लिए जाने को टोली बजाकर खड़ी होती, बाकी सखियों को आवाज़ देतीं, क्यों री सारी, हुआ कि नहीं? टोले से निकलते ही एक सुर में गा उठेंगी—नदी किनारे खेतों में खिले मटर के फूल री!

नारायण के जाते ही राम कहता, आ गए ठाकुर, आओ-आओ।

औरतें उसे 'छोटे ठाकुर' कहतीं।

भल्ला टोला उसके सपनों का राज है!

उस दिन जैसे ही उसने कदम बढ़ाया कि उसके बहनोई हृदय ने बुला-

कर कहा, सुनो। अरे, धोती के छोर में मूढ़ी ली है! ठीक है। गैयों को निकालकर नदी किनारे ले जा। खबरदार, किसीके खेत में न घुस पड़ें; नहीं तो तेरी पीठ की खाल उधेड़ दूंगा। दिन के तीन बजे सबको घर ले आना, तब नहा-धोकर खाना। समझ गया?

नारायण की दीदी लक्ष्मी दौड़कर बाहर आई—नहीं! बड़ी गंभीरता से हृदय ने कहा, क्या!

—गाय क्या चराएगा···

—हां, चराएगा। चरवाहे के दल में गायें ठीक से चर नहीं पातीं, और फिर यह सब बखेड़ा।

—तो क्या! ब्राह्मण का लड़का···

—ब्राह्मण के लड़के के चार हाथ निकले हैं, हुंः। ब्राह्मण का लड़का ब्राह्मण का लड़का हुआ, तो क्या हुआ। चरवाहे का पैसा लगता है।

और उसने हांक लगाई, नरैना, गायों को खोल।

नारायण को बुरा नहीं लगा। अच्छा ही लगा। उसने झट बांस की छड़ी उठाई और गायों को खोलकर नदी के किनारे की ओर हंका ले गया, जहां मल्लों के लड़के गायें चराते हैं।

नारायण गुसाईं—कहानी अच्छा कह लेता है। बोलते-बोलते उसका चेहरा बदल गया। हंसने लगा। बीच-बीच में जी की बात कहने में खास। रस घोलने लगा। कहता गया, पर गला धीमा, शांत। एकाएक रुका। मेज पर से गिलास उठाकर पानी पिया। बीड़ी सुलगाई। हल्के-हल्के दो-एक कश खींचकर आसमान की ओर ताकने लगा। उसके बाद अजीब तरह से बोल उठा, जब मैं नीले आसमान को ठीक नहीं देख पाता। आसमान की तरफ, रोशनी की तरफ ताक भी तो नहीं सकता। रात के आसमान की तरफ देखता हूं। उस समय लेकिन नदी किनारे नीला आसमान बड़ा अच्छा लगता था।

क्या बताऊं आपसे—नदी किनारे सब कुछ बड़ा अच्छा लगता था।

आसमान अच्छा लगता था, नदी का पानी अच्छा लगता था। बालू पर से घुटने-भर पानी तर-तर करके बहा करता था। एक दह था—गहरा पानी। वहां स्रोत का पता नहीं चलता था। कूद पड़ता था। तैरता। नदी के किनारे सरपत का जंगल। उसकी आड़ में लुका-छिपी खेलता। हरी-हरी घास। घास पर जाने कितने किस्म के फूल खिलते। नन्हे-नन्हे। लाल, सफेद, बैंगनी, पीले। कोई कष्ट नहीं था। दीदी को दुःख होता था, नारायण को नहीं होता। दीदी नसीब को बुरा कहती, नारायण नहीं कहता। दुनिया में दुखीरामों में सुख खोज लेने की एक गजब की क्षमता होती है। वह क्षमता वे अर्जित करते हैं। इसके अलावा एक सत्य और है भैया, वह है, मां के पेट से लेकर पैदा होने की शक्ति। सुखीराम लोग उसे सुख में पलकर खोते हैं, दुखीरामों का वह बढ़ता है। नारायण की यह शक्ति दिन-दिन बढ़ी थी। कितनी ठोकरें खाईं, कितना जो पेड़ पर से गिरा, कितनी बार बिच्छू ने काटा, बर्र-मधुमाछी ने काटा, इसकी गिनती नहीं। ठोकर लगकर बीच-बीच में पांव की उंगली पक जाती। बबूल के कांटे चुभाकर वह खुद ही उसका मवाद निकाल देता। एक बार बिच्छू ने काट खाया। दिन-भर बेहोश पड़ा रहा। शाम को खोजकर दीदी उसे भल्ला टोला से घर ले गई थी। उस समय तक अवश्य थोड़ा-थोड़ा होश हो आया था। ऐसे ही बड़ा हो रहा था, भल्लों से लाठी खेलना सीखा, शून्य में उलटना यानी मोलू खाना सीखा। शरीर जैसा मज़बूत हुआ, मन भी वैसा ही उल्लास और उत्साह-भरा। सारे ही दुःख-भय दूर भाग खड़े हुए थे—बहुत दूर। एक बार उसने एक स्यार को पकड़ा था। एक दिन नदी किनारे एक गड्ढा दिखाई दिया, गड्ढे में से एक पूछ बाहर निकली हुई थी। ज्यादा नहीं, पूंछ का थोड़ा-सा हिस्सा। गड्ढे के चारों तरफ तुरत की खोदी हुई माटी बिखरी पड़ी थी। स्यार को गड्ढे में खरगोश की गन्ध मिली थी, सो उसने नाखूनों से गड्ढे का मुंह बढ़ाया और घुस पड़ा। नारायण ने लेकिन स्यार नहीं समझा। उसने सोचा, पूंछ खरगोश की है। पूंछ की फुनगी निकली हुई थी। उसने झट कस करके पूंछ को पकड़ा और जोर से खींचना शुरू कर

दिया। जी-जान से खींचकर जब आधे धड़ को निकाल लिया, तब समझा कि यह तो स्यार है। लेकिन तब उससे छोड़ते नहीं बना। खुली प्रकृति में आज़ाद घूमते हुए उसने प्रकृति के सिर्फ रूप-स्नेह को ही नहीं, उसके क्रोध, उसकी हिंसा को भी पहचाना था। पेड़ों के खोंते से चिड़िया के बच्चे को उतारने में उसने मां चिड़िया की चोंच की ही ठोकर नहीं खाई, यह भी जाना कि बच्चा भी नाखून से खरोंचता है, चोंच मारता है। वह जानता था, ऐसे में स्यार आदमी को देखकर भागता है, पर चोट खाने पर मुड़कर डट जाता है, हमला करता है। जानता था कि स्यार के नाखून और दांत में धार ही नहीं, जहर भी होता है। लिहाज़ा उसने उसे छोड़ा नहीं। सारी ताकत लगाकर उसे खींचकर जैसे ही निकाला कि दोनों हाथों से उसे ज़ोर से घुमाना शुरू कर दिया। कई चक्कर लगाकर उसी हालत में उसे छोड़ देते ही वह कुछ दूर पर जाकर ज़ोर से गिरा—खासी दूर पर। उसके बाद उसने एक भारी-सा पत्थर हाथ में उठा लिया। स्यार लेकिन ज़रा देर मरा-सा पड़ा रहा, उसके बाद उठकर बेतहाशा भागा। नारायण गुसाईं ने मुस्कुराकर शांत गले से ही कहा, उस दिन के दुःख की बात से लगता क्या है, जानते हैं बाबू, लगता है, दुःख उस दिन स्यार की ही तरह नारायण के पास से भाग गया था।

सुख ! नारायण बोला, उस दिन के सुख की बात याद आने से याद आ जाती है एक जंगली लतर की बात। वह लतर नदी के किनारे हुई थी—बारहों महीने उसमें फूल लगते थे और वह लता पेड़ पर फैलती ही जा रही थी, फैलती ही जा रही थी। उसके नीचे हज़ारों हज़ार नन्हे पौधे उगते थे। पौधे उसकी जड़ से उगते थे। गायें उनको खाती थीं, लोगों के पैरों में रौंदे जाते थे, औरतें उन्हें काट-काटकर जलावन बनाती थीं, परन्तु उनका अंत नहीं होता, न ऊपर, न नीचे।

शुरू-शुरू में एक-दो साल वह सुबह उठकर पाठशाला जाया करता था। लेकिन घर पर नहीं पढ़ता था। घर पर समय नहीं [illegible]

नहीं हो पाता। धान-चावल बेचकर दीदी फीस देती, वह भी बाकी पड़ जाती। गुरुजी कभी-कभी निकाल दिया करते। लेकिन वह गुरुजी का काम बहुत कर दिया करता था। दस साल की उम्र में वह सख्त हो उठा था। बहनोई के घर की दीवाल गिर पड़ी, उसे उसने खड़ा कर दिया। घर-द्वार लीपा। साबें की रस्सी बांटी। छप्पर-छौनी के वक्त मजूर को नीचे से पुआल की अटियां फेंकी। रस्सी जुगाई। छप्पर के ऊपर चढ़कर भी थोड़ा-बहुत काम किया। गायों की विचाली काटना, साग-सब्ज़ी के लिए माटी गोड़ना, खाद डालना, पेड़ों का जतन करना—यह सब भी सीखा। और इन सबमें उसमें उस लता जैसी ही फूल खिलाने की उमंग थी।

बीड़ी-तम्बाखू भी शुरू किया। कूट-काटकर, छोआ मिलाकर तम्बाखू बनाना भी सीखा।

लिहाज़ा गुरुजी ने उसे निकाल नहीं दिया। और मन में एक न खत्म होनेवाला आनंद ही कहिए कि उल्लास या उत्साह ही कहिए—उसकी वजह से पढ़ना अच्छा लगता था। और जो भी दो-चार बार पढ़ लेता था, उसे सहज ही भूलता नही था। दूसरी पोथी और पहाड़ा खत्म किया था।

छः साल के बाद उसकी दीदी लक्ष्मी के लड़का हुआ। दीदी बच्चे के पीछे मगन हो गई, दीदी के साथ नारायण भी। उसकी खुशी और उमंग का अंत न रहा। इसी बीच लोगों में कानाफूसी होने लगी थी कि हृदय की बहू को अब बाल-बच्चा नहीं होगा। अब कब होगा भला? अठारह-बीस की उमर तो हो गई। हृदय भी शायद ब्याह करने की सोच रहा था। लेकिन वह दो कारणों से ब्याह नहीं कर पा रहा था। पहला कारण तो यह कि उन लोगों में लड़की को रुपया देकर ब्याह करना पड़ता है। लड़की-दहेज देना पड़ता है। लक्ष्मी के लिए उसके पिता को डेढ़ सौ रुपये देने पड़े थे। अब दूसरी शादी में तो और ज्यादा लगेगा। दूसरा कि नारायण के सात बीघा जमीन थी। उसकी फसल हृदय घाट बलरामपुर जा-जाकर ले आता है। एक तालाब है। मछुओं को ठीके पर दे दिया गया था। साल में उसके पचीस रुपये आते हैं। शादी कर लेने से शायद नारायण भी लक्ष्मी

के साथ चला जाएगा। यह नुकसान होगा। लेकिन हृदय को जो और जितना डर क्यों न हो, लक्ष्मी को उससे कहीं ज्यादा डर और चिन्ता थी। इसलिए बच्चा होने से उसकी खुशी का अंत नहीं था। नारायण को भी बहुत खुशी थी।

भल्ला टोले में राम पूछता, बच्चा कैसा है ठाकुर?

—अच्छा। अच्छा।

—कै दिन का हुआ?

—पांच साल का। दिन का नहीं कहना चाहिए। जै दिन का हो, उतने बरस का बताना चाहिए। इससे बच्चे की परमायु बढ़ती है।

बच्चा तीन महीने का हुआ कि नारायण ने पाठशाला छोड़ दी। सवेरे बच्चे के सामने बैठकर उसे दुलारता—बाबू रे, बाबू रे, बाबू रे! बच्चों को दुलारने की जितनी भी लोरियां हैं, उन्हें वह कुछ ही दिनों में सीख गया। छः महीने का होते-होते बच्चा उसकी गोद में और साल-भर का हुआ कि नारायण उसका घोड़ा बन गया। इन बातों में अजीब उमंग थी उसे। यह कभी नहीं सोचता कि उसे यह नहीं है और वह नहीं है—नहीं सोचता कि वह छोटा है कि बड़ा है। अपने भविष्य की नहीं सोचता। समाज, आदमी, ईश्वर—वह किसीको भी किसी बात के लिए दोष नहीं देता। उसकी जिस इच्छा के सामने जो बाधा आई, उसे पार करके वह उल्लास के साथ आगे बढ़ता गया, जैसे बाढ़ को काटकर कोई आगे बढ़ता है।

नारायण दुखीराम ही था। दुःख उसे पैरों के तले, पीछे से, अगल-बगल से जकड़ लेने की कोशिश करता, लेकिन वह लगातार दुःख को पीछे छोड़ता हुआ आगे भागता। दुःख से उसकी भेंट नहीं होती। कभी इत्तफाक से भेंट हो भी जाती तो वह उसे उस स्यार की तरह पूंछ पकड़कर घुमाते हुए दूर फेंक देता—दुःख दौड़कर भाग जाता, वह हंसा करता।

एक बार नौबत आई थी बाबू, नदी किनारे बगल के गांव के बाबुओं के बगीचे में जामुन फूला था, भल्ला टोले की एक युवती तोड़कर खा रही

थी। नदी का निर्जन किनारा, आम-जामुन का पुराना बगीचा।

वहां साहबों की रेशम कोठी थी। बगीचा उन्हीं लोगों का लगाया हुआ था। आम और जामुन बड़े अच्छे थे। जामुन तो नामी थे। बड़े-बड़े गुद्दे और रस-भरे, मीठे; बाजार में बिकनेवाले मीठे काले जामुन जैसे। वह दईमारी युवती लोभ नहीं सम्हाल सकी। चढ़ गई पेड़ पर। चढ़ते वक्त अपनी टोकरी नीचे रख दी, कपड़ा उतारकर गमछा पहन लिया। कपड़े में जामुन का दाग लगने से छूटता नहीं है। मगन मन जामुन खा रही थी। मैं नदी किनारे भल्लों की ही एक भैंस की पीठ पर लेटा हुआ था। भैंस की पीठ पर बैठने से सोने में आराम लगता है। पीठ चौड़ी होती है, और भैंस की एक खासियत है कि वह दौड़ती नहीं। पीठ नहीं झाड़ती। केवल इतना ही ख्याल रखना होता है कि वह कब बैठती है, कब पानी में घुसती है। नहीं तो वह मजे में डोलती चलती है, लेटने में बड़ा आराम लगता है। धूप थी, ताप से बचने के लिए कम्बख्त भैंस बगीचे में घुस पड़ी। छांह में खड़ी हो गई। सुनसान बगीचा। झींगुर की झनक। झीं-झीं। आम के बगीचे में झींगुरों का रात-दिन समान। भैंस बैठ पड़ी। मैंने औंधे होकर उसकी गरदन पकड़ ली। इतने में कानों में आवाज आई:

—उतर, उतर जा। बन्दूक देख रही है कि नहीं!

मैंने गरदन उठाकर देखा। पास के गांव के बाबुओं के यहां का एक छोकरा जामुन के पेड़ की तरफ बंदूक उठा रहा है। इतने में सुनाई पड़ा—मैं शोर करूंगी।—नारी-कण्ठ।

छोकरे ने कहा, शोर करेगी? ठहर, मैं ही शोर मचाता हूं, तू कपड़े उतारकर गाछ पर चढ़ी है। कपड़े उठाकर मैं चल दूंगा! जा, तू कैसे ही गमछा पहनकर घर जा।

उनका गमछा भी गमछा जैसा ही होता है बाबू। किसी कदर कमर-भर ढकता है, छाती तक नहीं पहुंचता। मैं उठ खड़ा हुआ। मतलब समझ गया। अजी छोकरा बाबू, युवती की खुली छाती देख शराब जैसे नशे में हो। नारायण उठा। पेड़ों की आड़ से जाकर पीछे से बंदूक की नली पकड़-

कर झटके से बंदूक छीन ली। जानता नहीं था न। उसी खींचने में कैसे तो बंदूक छूट गई और गोली नारायण के बगल से होकर निकल गई। नारायण हक्का-बक्का होकर जाने कैसे गिर पड़ा और बंदूक बगल में गिर गई। समझ गए, बाबुओं का वह छोरा तो नौ दो ग्यारह हो गया। उसने समझा कि नारायण खत्म हो गया। नारायण को काठ तो मार गया था बाबू, पर छोकरे का उस तरह से भागना देखकर वह दशा जाती रही। हा-हा हंसते-हंसते वह लोट-पोट। छोकरी पेड़ से उतरी। नारायण ने कहा, ले, कपड़ा पहन ले। घर चल।

राम भल्ला ने बाबुओं से रुपया ऐंठकर बंदूक दे दी। नारायण को लेकिन दुःख लिखा था। हृदय घर आया। बाबुओं के यहां जाकर उसने सब सुना और नारायण को खूब पीटा। कमरे में बंद कर दिया। खाना नहीं दिया।

नारायण को लेकिन उसकी परवाह नहीं। छोकरा बाबू के भागने की जब-जब याद आई, वह हंस दिया।

लोगों में यह बात फैली कि नारायण का चरित्र ठीक नहीं। राम-भल्ला ने कहा, छोटे ठाकुर, नष्ट रात के चांद को देखने से मना किया था मैंने। फूल मिल गया न।

नारायण ने एक बुरी बात कह दी थी। सीखी थी उसने। उन लोगों की झोली में जो कुछ था, वही पाया था उसने—इसीलिए सीखी थी।

बीड़ी पीता था। तम्बाखू पीता था। भल्ले शराब चुलाते थे। पीते भी बेहद थे। नारायण ने शराब चुलाना भी सीखा था, पर पीता नहीं था। कैसी तो बू लगती थी। जी मिचला उठता। इसके सिवा, छुटपन में मां के मर जाने के बाद साल-भर पिता जिंदा थे, उस साल-भर वह उनके साथ-साथ घूमता रहा। पिता एक संपन्न कायस्थ परिवार में शालिग्राम की पूजा करते थे। पिता अच्छे-खासे थे देखने में, धर्मभीरु थे। नारायण को उन्होंने जो सिखाया था, या नारायण ने उनसे जो सीखा था, वह ठीक स्मरण न रहते हुए भी शायद शराब पीने की मनाही की थी और शराबियों से

वह नफरत करते थे। नहीं तो नारायण शराब पीता। शराब चुलाना एक विद्या जो है बाबू। वह विद्या उसने सीखी थी।

राम को वह बीच-बीच में कहा करता था, यह काम क्यों करते हो? पीते क्यों हो राम?

राम हा-हा हंसता। लेकिन उसने यह कभी नहीं कहा कि तुम पिओ। बल्कि चुलाई के समय नारायण जब औरों की तरह बड़े उत्साह से काम करता, तो वह कहता, ठाकुर, यह कैसा नशा सवार हुआ है तुम्हें? शराब पिओगे नहीं, मगर···

नारायण कहता, आखिर एक हुनर है राम!

राम कहता, खाक हुनर है ठाकुर। ब्राह्मण का लड़का होकर पढ़ना-लिखना नहीं सीखा, गाय की चरवाही की। दीवाल उठाना सीखा, छौनी-छप्पर करना सीखा, जाल बुनना सीखा—जाल डाला, रस्सी बांटी, कुम्हारों के पास देवी-प्रतिमा गढ़ने के समय मस्त···। बहनोई के खेत में हल चलाते हो, बीज डालते हो, धान रोपते हो, फसल काटते हो। भांजे को कंधे उठाए घूमते रहे, सीखा नहीं सिर्फ बाम्हन का काम, लिखना-पढ़ना, कुल-करम। नसीब तुम्हारा!

नारायण ने कहा, पढ़ तो मैं सकता हूं राम। पाठशाला नहीं जाता। दीदी के यहां एक मोटी रामायण है, उसे मैं पढ़ता हूं।

—फिर क्या है, ढेर पढ़ लिया! अब तुम्हें जज-मजिस्टर बना देगा।

—सिर्फ रामायण ही नहीं, जीजा जी यात्रा की किताब लाते हैं, घर में है, वह भी पढ़ता हूं।

राम हृदय को शौक कहने को एक ही था, यात्रा में पार्ट करना। पड़ोस के गांव में शौकिया यात्रादल है, उसमें खूब पार्ट करता है। वही-किताब हृदय घर ले आता है। मौका मिल जाने से नारायण वही हिज्जे लगा-लगाकर पढ़ता है। समझ लेता है, इसलिए कि हृदय जब यात्रा करने के लिए जाता है, तो नारायण को साथ ले जाता है। यात्रा के मंच पर उतरने से वह शराब ज्यादा पीता है। वैसे में नारायण को सम्हालना

पड़ता है। उसने नारायण को भी मंच पर उतारना चाहा था। मगर नारायण से बोलते नहीं बनता। तिसपर वह हंस पड़ता है। पार्ट सुनते-सुनते ऐसा हो गया कि किताब का एक शब्द पढ़ लेने से ही बाकी सब याद आ जाता है, पढ़ना आसान हो जाता है। लेकिन राम उसपर हंसा।

अचानक एक चिट्ठी आई एक दिन—पोस्टकार्ड राम ले आया। राम उस गांव में गया था, जहां साहबों ने रेशम की कोठी की थी। पारी पर आनेवाले डाकिये ने उसे चिट्ठी देते हुए कहा था, देख राम, यह चिट्ठी हृदय की स्त्री की है। इसमें लिखा है कि शुक्र के दिन उसके यहां मेहमान आएंगे। हृदय की स्त्री की मौसी। असल में उन लोगों को कभी कोई चिट्ठी तो आती नहीं है न, मैंने इसलिए पढ़कर देखा। तुम्हारे गांव में मेरे जाने की पारी अगले शनिवार को पड़ती है। मेहमान शुक्रवार को आएंगे, बस से। यहां आदमी और गाड़ी रखने को कहा है। मौसी को हंफनी रोग है। उतरकर बेचारी मुसीबत में पड़ेगी। तेरे बगल में ही तो घर है, दे देना।

राम ने चिट्ठी लाकर लक्ष्मी को दी। जबानी सारी खबर बता दी। लक्ष्मी ने कहा, कलकत्ते से मौसी आ रही है! अरे बाबा, किसलिए? अपनी ही जलन से जान जाती है। क्यों आ रही, यह नहीं लिखा है?

राम ने कहा, डाकिये ने सो तो नहीं बताया।

नारायण धस्-धस् करके पुआल काट रहा था। उसकी तरफ ताककर लक्ष्मी ने कहा, वह रहा एक ब्राह्मण के घर का बैल। काला अच्छर भैंस बराबर। घर में इतने बड़े लड़के के होते चिट्ठी पढ़वाने के लिए दूसरे के यहां जाना पड़ेगा!

नारायण झट उठ आया। हाथ से चिट्ठी खींचकर उसने पढ़ने की कोशिश की। लक्ष्मी बोली, ला, ला, घोपाल के यहां से पढ़वा लाऊं।

—पढ़ पा रहा हूं। बड़े साफ हरूफों में लिखा है—सावि···सावि···त्री समानेपु। वे···टी···ल···लक्ष्मी, तुम मेरा···

—इतना सभी पढ़ सकते हैं। ला दे, मुझे दे। बड़-बड़ मत कर। मुझे

समय नहीं है ।—लक्ष्मी ने खींचकर चिट्ठी ले ली और ज़रा दूर पर घोपाल का घर था, वहां गई ।

नारायण से राम से कहा, मैं पढ़ नहीं पा रहा था राम ? ऐसे ही छोटे-छोटे कष्ट वह पाता था। हृदय से नहीं, दीदी से । राम से भी। लेकिन दुनिया उसे दुःख नहीं दे पाती । राम ने कहा था, हां पढ़ तो रहे थे भैया ! साविस्तिरी समानेपु तो डाकिये ने भी नहीं कहा था, मैंने भी नहीं । तुमने पढ़ा । लेकिन धड़धड़ाकर पढ़ना चाहिए न ! तुम्हारी दीदी इसी गुस्से से ले गई और क्या ! और क्या नाम है, जाने कहां क्या भूल हो !

राम चला गया। नारायण फिर पुआल काटने जा रहा था कि मुन्ना नींद से जग गया । रो उठा । बरामदे पर बिछे बिछावन से नारायण ने उसे अपनी गोदी में उठा लिया। मुन्ना डेढ़ साल का हो गया है । वह मामा से बुरी तरह हिला है। गरुड़ जैसे विष्णु को ले जाता है, मामा उसे कंधे पर लेकर उड़ता फिरता है । पुआल काटने की जगह पर उसे बिठाकर मामा पुआल काटने लगा । मुन्ने के बोल फूटे हैं । वह बोलता है । नारायण बोला, अबे, तू खूब पढ़ना-लिखना । अंग्रेज़ी पढ़ना । पटापट अंग्रेज़ी बोलना । तब मैं तुमसे सीखूंगा। समझ गया ? या क्या कहेगा ? गेट आउट—भागो स्नूप्स कहीं के ! हुं-हुं, फिर तो एक तमाचा जड़ दूंगा। तेरे बाप से परहेज़ करता हूं, मगर तुमसे नहीं करूंगा, हां ।

लक्ष्मी बुदबुदाती हुई लौट आई। आ रही हैं ! मुझे कृतारथ करने आ रही हैं । लक्ष्मी बिटिया, अगले शुक्रवार की सांझ को तुम्हारे यहां आ रही हूं । हंफनी से बड़ी तकलीफ में हूं । मौत भी नहीं आती । इलाज से कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिए तुम्हारे यहां बाबा कमलेश्वर की शरण में जा रही हूं । बाबा की स्वप्न वाली दवा प्रसिद्ध है । इसके अलावा साधु बाबा हैं । वे रविवार को दवा देते हैं, मुझे याद है। शनिवार को पहुंचूंगी, इतवार को दवा लूंगी, सोमवार को लौट आऊंगी । बस के पड़ाव से तुम्हारे घर तक पैदल नहीं जा सकूंगी। एक गाड़ी भेज देना, किराया मैं दे दूंगी। मेरे साथ मेरे जेठ की लड़की जाएगी ।

मौसी को मौसा दीदी के पैदा होने से पहले ही व्याह ले गए थे। हिरन-हाटी में पोस्टमास्टर होकर आए थे। घाट बलरामपुर हिरनहाटी के पास ही है। मौसा भी आचार्य ब्राह्मण थे। उन लोगों को भी व्याह करने में रुपये देने पड़ते। कलकत्ते के इलाके में भी। जिस समय मौसी ने हंफनी से परेशान हो जाने की चिट्ठी लिखी थी, वही तो सन् १९३५ की वात है। उससे भी पचीस साल पहले मौसी का व्याह हुआ था। मौसा से रुपया नहीं लिया था। नारायण की नानी ने लिखा लिया था कि यहां की सम्पत्ति पर लेकिन उन्हें हक नहीं होगा। मौसी देखने में सुंदर थी। मौसा इसीपर राजी हो गए। गंवई-गांव में आकर रहने की इच्छा भी नहीं थी। व्याह के बाद से मौसी परदेस में ही घूमती रही। कभी-कभी खत लिखती थी। एक बार शायद नाना जी के मरने के बाद आई थी। उस समय दीदी का जन्म हो चुका था। नारायण नहीं जन्मा था। उसके बाद नारायण की मां की मृत्यु के बाद एक बार पत्र लिखा था। कलकत्ते के पास दमदम में उनका घर है। उस समय मौसा की छुट्टी थी। वे लोग दमदम में ही थे। रीत के दो रुपये भेज दिए थे। दीदी के व्याह के समय मौसी-मौसा दोनों आए थे। आशीर्वादी में दीदी को कान के फूल दिए थे। वावूजी के मरने के वाद हृदय ने पत्र दिया था। उस पत्र का जवाव नहीं आया। और कुछ दिन के बाद घाट वलरामपुर से गोविंद हजाम वहां के राय परिवार की क्रिया का न्योता वांटने यहां आया था। वही एक चिट्ठी दे गया था। डाकिया गांव में ले गया था, कोई नहीं मिला तो वह उस चिट्ठी को वहां के राय वावुओं के यहां दे गया। राय ने वह पत्र गोविंद नाई को देते हुए कहा, उस बस्ती में जा रहा है, यह चिट्ठी हमारे गुसाईं के जमाई को दे देना। उस पत्र में लिखा था कि मौसा चल वसे। मौसी दमदम वाले मकान में है।

रोना चाहिए, इसीलिए लक्ष्मी एक वार रोई थी। नारायण को दुःख-कष्ट कुछ नहीं हुआ। थोड़ा अफसोस हुआ था, सुना था कि मौसा है, पर देख नहीं पाया।

दीदी कहती है, उफ्, जैसे शौकीन थे मौसा! थे तो मास्टर, पर

गांव के बड़े लोगों से बाबू थे। आंखों में सुनहली ऐनक। सुंदर कमीज़। हरदम बने-ठने। कुरते में कुछ लगा तो उंगली की ठोकर से ऐसे झाड़ते कि गंदगी तुरंत साफ। खाते अच्छा थे। जो-सो रुचता नहीं था। मेरे व्याह के समय, बाप रे, पूरियां खाईं ही नहीं। आखिर उसी रात मौसी ने अपने हाथ से रोटी पका दी, तब खाई।

वही रोते-रोते उस दिन दीदी ने कहा था। दूसरे दिन से फिर चर्चा नहीं हुई—मौसी की भी नहीं, मौसा की भी नहीं। हृदय ने कोई पत्र नहीं लिखा।

इतने दिनों के बाद मौसी की चिट्ठी आई—हंफनी हुई है। वह कमलेश्वर के शिव की दवा के लिए आ रही है, दो दिन रुकेगी।

आएगी, दो दिन ठहरेगी, इसमें कोई अन्याय नहीं। मगर हृदय आदमी ही जो और तरह का है। अब उपाय भी तो नहीं, कल शुक्रवार है और आज बृहस्पति की सांझ हो चुकी।

लेकिन नारायण के उत्साह की सीमा नहीं थी। मौसी आ रही है। कलकत्ते की मौसी। उसे इस बात का अचंभा लग रहा था कि मौसी के साथ कोई मर्द नज़र नहीं आ रहा है। उसके जेठ की लड़की आ रही है।

मौसी ने जेठ की लड़की को पाला-पोसा है। उसे तो बाल-बच्चा हुआ नहीं। मौसी के पास काफी पैसे हैं। मौसा ज़िंदगी-भर नौकरी करते रहे हैं।

मौसी सचमुच कलकत्ते की मौसी जैसी ही है।

गोरा-चिट्टा रंग। दीदी बताती है, मौसी को सुंदरी देखकर ही मौसा ने ब्याहा था। नारायण की मां भी गोरी थी, देखने में अच्छी थी। उसकी काध झलक नारायण को याद है। उसकी मां घाट में नहाती और नारायण थोड़े पानी में खेला करता। एक तसवीर और भी याद है। दुर्गा-पूजा समय हाथ में पूजा की थाली लिए मां रायों की ठाकुर बाड़ी में पूजा करने ती थी। कुछ छिटपुट याद—मां उबलते चावल को हांडी में कलछुल ल रही है; सामने वाले कमरे में झाड़ू दे रही है। इसी तरह की।

किंतु मां से मौसी के रंग की तुलना नहीं हो सकती। सच पूछिए तो मौसी बहुत दुबली नहीं है। बूढ़ी होने के बावजूद आंख-मुंह बैठे नहीं हैं। बाल काफी पक गए हैं। आंखें बड़ी-बड़ी। पहनावे में समीज़ पर बिना कोर का सफेद कपड़ा। धपधप धुला। लेकिन हांफ रही है। रुक-रुककर बोलती है। बीच-बीच में खांसती है। गले से घड़-घड़, सां-सां आवाज़ होती है। उसके साथ ग्यारह-बारह साल की एक लड़की। लड़की काली-सी, नाक ज़रा चपटी। आंखें कनपटी तक बढ़ी तो नहीं, पर बड़ी हैं। बाल ढंग से कंघी किए हुए; जूड़ा नहीं, एक वेणी, उसमें फीता बंधा। डोरियां साड़ी, नीली कुरती। नारायण को सबसे ज़्यादा आश्चर्य हुआ, उसके पैरों में चप्पल हैं।

राम की गाड़ी में टप्पर बांधकर नारायण अकेले ही बस-पड़ाव पर गया था। मौसी और वह लड़की उतरकर चारों तरफ ताक रही थीं। मौसी के हाथ में एक छोटी-सी टोकरी थी, सखुए के पत्ते से मढ़ी। बस के खलासी ने मझोले आकार का एक टिन का सूटकेस उतार दिया।

मौसी और साथ की लड़की की पोशाक और चेहरा देखकर नारायण को पहचानने में कष्ट नहीं हुआ। गजब, जिस लडकी का रंग काला, नाक चपटी है, छोटी है, वह भी देखने में इतनी सुंदर लगती है!

नारायण ने जाकर मौसी को प्रणाम किया, मैं हूं, नारायण!

—नारायण! तू!—मौसी ने अवाक् होकर उसमें कुछ देखा।

वह लड़की भी अवाक् होकर उसे देख रही थी। लगभग हम-उम्र। नारायण कुछ बड़ा होगा। उसने पूछा, चाची, तुम्हारी बहन का लड़का?

—हां। उसके बाद मौसी ने नारायण से पूछा, हां रे, गाड़ी लाया है न।

—लाया हूं। खूब अच्छी तरह से पुआल की गद्दी लगा दी है। वह रही।

—हाय राम, ये तो भैंसे हैं रे!

—तो क्या हुआ। बैलों से अच्छे। बड़े शांत होते हैं—मैं इनकी पीठ पर लेट जाता हूं।

—बाप रे!—वह लड़की सिहर उठी—गिरा नहीं देते हैं?

—नहीं ।—नारायण हंसा—बड़े ठंडे हैं। कोई डर नहीं। जरा धीरे चलेंगे। आराम से चलोगी।

—क्या पता ! मौसी ने कहा, गाड़ीवान से कह दो, जरा होशियारी से ले चलेगा।

हंसकर नारायण बोला, गाड़ी मैं ही ले चलूंगा मौसी, मैं ही गाड़ीवान बनूंगा।

—हाय राम ! तू गाड़ीवान क्या बनेगा रे ! फिर तो मैं नहीं जाती। यहीं किसीके यहां कहीं थोड़ी-सी जगह ठीक कर दे मेरे लिए, किराया दूंगी।

—डरने की बात ही नहीं मौसी। मैं बहुत अच्छी गाड़ीवानी कर लेता हूं। जीजा जी की फसल मैं ही गाड़ी से ले आता हूं। उनका धान साठ पलसा की हाट ले जाता हूं बेचने के लिए। सवार तो हो मौसी, कोई डर नहीं।

बस के क्लीनर ने कहा, हां, मां जी, जाइए। छोकरा खूब होशियार है। हम लोग हरदम देखा करते हैं।

आखिर मौसी गाड़ी पर चढ़ी। बोली, भैंसों को ठीक से पकड़।

नारायण ने भैंसों को पकड़ा और साथ ही उनका यह डर देखकर उसे कौतुक भी हुआ। वह लड़की मौसी के बाद गाड़ी पर चढ़ी, बड़ी सावधानी से। नारायण ने गाड़ी को उठाकर भैंसों के कंधे पर रक्खा और आदत जैसी थी, भैंसों की पीठ पर हाथ रखकर टप् से गाड़ी पर चढ़ गया। पेट में पैरों की ठोकर लगाकर जीभ के के:-के: इशारे से भैंसों को चलाने लगा। गाड़ी चल पड़ी।

अब मौसी ने पूछा, हां रे नारायण !

—हां मौसी।

—किस दरजे में पढ़ते हो ?

—मैं पढ़ता नहीं हूं मौसी।

—पढ़ने नहीं हो ?

—नहीं।

—तो ?

नारायण ने इसका जवाब नहीं दिया। जवाब क्या दे ? मौसी नेल लेकिन छोड़ा नहीं। पूछा, हां रे नारायण !

—एं !

—पढ़ता नहीं है, तो करता क्या है ?

—करूंगा क्या ! काम-काज देखता हूं। गाय-गोरू की देखभा करता हूं, उन्हें चराता हूं, खेती-बारी देखता हूं। धान काटता हूं। दीदी के बच्चे को संभालता हूं।

—कहां तक पढ़ा है ?

—पाठशाला में दो साल पढ़ा था।

—फिर ?

—फिर क्या ? छोड़ दिया पढ़ना। घर का काम कितना है ! बच्चे को देखना। एकसाथ आखिर कितना होगा !

—हूं ! फेल हुआ सो छोड़ दिया ?

—नहीं। फेल-वेल नहीं हुआ। समय नहीं मिलने लगा। जीजा जी नाराज़ होने लगे। दीदी को भी तकलीफ हो रही थी। सो छोड़ दिया। दीदी ने भी कहा।

गाड़ी नदी के घाट की उतराई में उतर रही थी। हुड़-हुड़। वह लड़की चीख उठी—अरे, कर क्या रहे हो, गिर जाऊंगी, उलट जाऊंगी जो···

नारायण ने हंसकर कहा था—नहीं।

मौसी वर्दवान से मिहीदाना और सीताभोग लेती आई थी। दीदी के बच्चे के हाथ में दो रुपये दिए। दीदी का भारी मुंह तुरत हंसमुख हो उठा था। प्रणाम करके बोली, रास्ते में बड़ी तकलीफ हुई न मौसी ?

मौसी ने कहा, रेल में तो ज़्यादा तकलीफ नहीं हुई बिटिया। औरतों

वाले डिब्बे में चढ़ गई थी, भीड़ नहीं थी। बस में कष्ट हुआ। ऐसा रास्ता और इतनी भीड़। तो भी औरत जानकर बैठने की जगह कर दी थी। लेकिन तुम लोगों वाला रास्ता ऐसा है कि टीला, गड्ढा···गाड़ी गड़-गड़ाकर गिर पड़ती। और फिर यहां तक की क्या बताऊं !

कपाल पर हाथ रखकर बोली, क्या बताऊं, बाबा कैलाशनाथ का नाम लेती हुई आई··· और फिर बीमारी का कष्ट। रात बैठकर बितानी पड़ती है। सांस रुक जाती है। नहीं तो भैंसागाड़ी देखकर वहीं से लौट जाती। उफ, नज़र कैसी !

दीदी खूब हंसी। बोली, क्या करना मौसी, जहां का जैसा। यह कल-कत्ता तो नहीं है। हां, जेठ की लड़की यही है ?

—हां, यही है मेरी नीरू। निरुपमा। जेठ के तीन-तीन लड़कियां। ज़च्चाखाने से ही मैंने इसे लिया। इसकी मां बहुत बीमार पड़ गई थी। उसी बीमारी में चल बसी। यह मेरे ही पास है।

—सो अब तो ज़िम्मेदारी आई। ब्याह करना होगा।

नीरू ने हंसी दबाने के लिए मुंह पर हाथ रखा। मौसी ने कहा, ।ह अभी कहां बिटिया, कलकत्ते में तो गंवई-गांव जैसा नहीं है। दम भ ७ हुए नहीं कि ब्याह। यह अभी पढ़ रही है। पढ़े।

—पढ़ रही है ? स्कूल जाती है ?

—हां। मुहल्ले के स्कूल में डाल दिया है।

—कलकत्ते की बात ही और है। तो अकेली ही स्कूल जाती है ?

—और क्या ? ले कौन जाएगा ?

दीदी ने नीरू से कहा, वाह, तुम तो खूब बहादुर लड़की हो !

नीरू फिर हंसी थी।

अबकी मौसी बोली, हां री लक्ष्मी, नारायण पढ़ता क्यों नहीं है ? उसने कहा, पढ़ता नहीं है। पढ़ना छोड़ दिया है।

लक्ष्मी चुप थी। जरा देर में बोली, क्या बताऊं मौसी, उसका नसीब !

—पढ़ने में जी नहीं लगाता ? याकि बुद्धि नहीं है ?

—बुद्धि तो खूब है मौसी। जो देखता है, वही सीख लेता है। लेकिन मन ठीक नहीं भी कहो, और तुमसे झूठ क्या कहूं, तुम्हारे जमाई··· । चुप हो गई। फिर बोली, घर पर तो मैं रहती हूं। यह रहता है परदेस में। घर का काम-धंधा, खेती-बारी देखनेवाला कोई नहीं है—कहा। कहना था कि नारायण भी जुट गया। देखो न, ब्राह्मण का लड़का, इतना बड़ा हो गया, जनेऊ भी नहीं हुआ।

दीदी फिर जरा चुप रहकर बोली, इसे तुम अपने साथ ले जाओ न मौसी। तुम्हारे पास तो बहुत पैसे हैं ! इसे पढ़ाना। तुम्हारे यहां नौकर की तरह खटेगा, देख लेना।

मौसी ने लम्बा निःश्वास छोड़कर कहा, नहीं री लक्ष्मी, रुपये मेरे पास नहीं हैं। रुपये तुम्हारे मौसा ही गंवा गए हैं। नौकरी से रिटायर करने के बाद व्यवसाय करने लगे। उसीमें सब गया बिटिया; घर का हिस्सा बचा था, आखिर वह भी गया। जेठ का गया—उन दोनों का गया। पैतृक घर छोड़कर आखिर किराये का मकान। पेंशन थी उनकी, किसी कदर दिन कटे। अब अपने ज़ेवर बेचकर चला रही हूं। जेठ गुजर गए, दो बेटियों का व्याह कर गए थे—एक लड़का था, वह कहां चला गया, कोई पता नहीं। अब यह लड़की मेरे कंधे पर है। इसे पढ़ा रही हूं। पढ़-लिख गई तो जो कुछ बनेगा, करेगी। मास्टरी-वास्टरी। या फिर शादी। मगर शादी भी कैसे करूंगी, नहीं जानती।

लक्ष्मी ने कहा, क्यों, शादी में तो हमारे यहां लड़कियों को ही रुपया मिलता है !

हंसकर मौसी ने कहा, कलकत्ते से तो वह दिन जाता रहा है बिटिया। वह सब अब नहीं रहा। जेठ की बड़ी लड़की का व्याह यों ही हो गया, दहेज नहीं देना पड़ा। मंझली लड़की की शादी में ढाई हजार लगा था। जैसे-जैसे दिन बीत रहे हैं, लड़कियों की शादी का खर्च बढ़ रहा है। तिस-पर लड़की काली है, बहुत रुपये लगेंगे।

नीरू बोल उठी थी, क्या जो-सो कह रही हो चाची ? मैं ब्याह नहीं करूंगी।

मौसी मुस्कराकर बोली, लो देखो, लड़की को शर्म आ रही है ! रहने दो यह बात।—इसके बाद ज़रा देर चुप रहकर लम्बा निःश्वास फेंकते हुए बोली, मौसी तेरी अमीर नहीं है रे ! गरीब है । तुझसे भी गरीब।

उसके बाद मौसी ने एक-एक करके सब कुछ खोज-पूछ की—घाट बलरामपुर के बारे में, लक्ष्मी के घर के बारे में। पूछा—वहां वाला घर है न ?

—है बीच-बीच में छौनी-छप्पर करा आता है। परन्तु चूंकि कोई रहता नहीं है, इसलिए टूट-फूट रहा है। बड़ी दूर है न ! घर का दरवाजा कोई चुरा ले गया। खिड़की में दीमक लगी। लाचार उन सबको उखाड़कर बेच दिया। नारायण जब वहां जाएगा, तो बना लेगा।

—और खेत-पथार ?

—हैं। साल के साल जाकर धान-पान ले आता है।

—फिर तो उसीसे इसकी पढ़ाई चल सकती है रे। उसी ज़मीन से तो उसके बाप का घर चलता था, मेरे बाप का चलता था।

दीदी इस बार चुप हो गई थी। ज़रा सोचकर बोली थी, वह सब उसे जोड़-जाड़कर दे देगा। वह भला नहीं देगा ? जरूर देगा।

हृदय ने कहा, कंजूस-मक्खीचूस कहीं की ! गरीब है ! तो फिर गरीब जैसी बात क्यों नहीं करती ? इतनी लंबी-चौड़ी क्यों हांकती है ?

यह बात उसने मौसी के चले जाने के बाद कही थी। थोड़ी पीकर ही आता था। शनिवार की सांझ को जैसे वह आया करता वैसे ही आया था। जेब में एक शीशी पड़ी थी। यहां आने पर चुलाई वाली पीता। नारायण को ही भल्ला टोले से ला देनी पड़ती थी।

मौसी को देखकर वह थोड़ा खुश हुआ था। धनी मौसी आई है !

लक्ष्मी से सारा हाल सुनकर बोला, दुर-दुर-दुर ! मुन्ने को कुछ दिया ?

लक्ष्मी ने कहा, दो हाथों में दो रुपये दिए थे।

—दो रुपये ? जा-जा। तुझे क्या दिया ?

—कुछ दिया नहीं है। अपनी साड़ी ले आई है सिल्क की। वही देगी।

—पुरानी ! कानी कुतिया मांड़ पर ही राज़ी।

लक्ष्मी चुप हो गई। उसने मुन्ने के कपाल पर के बाल खिसका दिए। हृदय ने फिर कहा, नारायण को क्या दिया ?

—कहां ? कुछ तो नहीं देखा।

—अरे ऐ नरैना।

नारायण पास ही खड़ा था। मौसी और नीरू को कोठे पर सुलाकर लक्ष्मी नीचे के कमरे में सोई थी। नारायण बरामदे में।

नारायण ने कहा, कुछ नहीं दिया है।

—जो भी दे, दीदी को दे देना। समझा ? मैं तो सवेरे चला जाऊंगा। गाड़ीवानी कर रहा है, कुछ देगी। देगी।

गाड़ीवानी तो उसने की थी। कैलाशनाथ ले गया था। दीदी साथ गई थी। हृदय भी गया था। हृदय के जाने का मतलब था। कैलाशनाथ के पास वाले गांव के सरखेल लोग सम्पन्न व्यक्ति हैं—उनकी अपनी श्रेणी के। यानी वे लोग भी कन्या-दहेज लेकर व्याह करते हैं। व्याह देते हैं। सरखेलों के एक लड़के को ले आया था। वह उस रोज़ उन सबों को न्योता करके अपने घर ले गया था, खिलाया-पिलाया था। घर-द्वार अच्छा है। टिन की छौनी, पक्के की दीवार। आंगन में धान की तीन-चार बड़ी-बड़ी मोरियां। बड़े-बड़े बैल। उन लोगों ने बड़ा आदर-जतन किया। नीरू नारायण के साथ घूम रही थी, नारायण उसे गांव दिखा रहा था। कैलाशनाथ का मंदिर—साधु बाबा को देखकर उसीने कहा था, नारायण भैया, वह देखो, वहां लाल-सादे कैसे फूल खिले हुए हैं। कैलाशनाथ के मंदिर के दक्खिन बहुत खुला मैदान है। वहीं एक भत्ता हुआ-सा पोखरा। उसीमें भेंट के फूल फूले हुए थे—सफेद, गुलाबी, लाल। रक्तकमल। चैत का महीना। खुली बैहार-

—बीच-बीच में सब्जियों के खेत हरे हो उठे थे, किसी-किसी खेत में तिल की फसल लगी थी। उसमें फूल आ रहे थे। बाकी परती। धूल उड़ रही थी। कुछ दूर पर दो-चार सेमल-पलाश के पेड़। दो-चार लाल फूल फूले हुए थे। इन्हीं सबके बीच उस पोखरे में फूल खिले थे—अनगिनती फूल—और माथे पर पांत में उड़ रही थीं बन-बतखें।

कल नारायण से नीरू का कुछ मेल हुआ था। थोड़ा-सा। उसने नीरू को अपना गांव दिखाया था। नदी का किनारा, दह, महादेवथान—उसकी प्यारी जगह भल्ला टोला—यह सब घुमाया था। नीरू ने उसे कलकत्ते के बारे में बताया था—चिड़ियाखाना, जादूघर, पारसनाथ का बगीचा, सिनेमा, अपना स्कूल, स्कूल की दीदियों के बारे में बताया था। भल्ला टोले में जाकर नारायण खुद भी खीजा, नीरू को भी खिजाया।

राम की स्त्री ने कहा, हाय राम, तुम्हारी मांग में सिंदूर कहां है जी। याकि ब्याह नहीं हुआ है?

नारायण ने कहा, कलकत्ते में छोटी उमर में शादी नहीं होती।

—छोटी। छोटी कैसे जी! शादी हुई होती, तो अब तक बच्चा होता।

नीरू बिगड़ उठी थी, बोली, कहां के असभ्य हो तुम लोग? नारायण भैया, मैं चलती हूं। छिः-छिः!—कहकर वह हनहनाती हुई चल पड़ी। नारायण भी खूब शरमा गया था। वह भी उसके पीछे-पीछे चल रहा था। अचानक नीरू ठिठकी और चीख उठी, बाप रे! पीछे पलटकर नारायण को देखकर बोली, सांप!

—सांप? कहां है?—नीरू को पीछे करके नारायण आगे बढ़ गया। एक हरहरा सांप देखकर वह हंस पड़ा। बोला, यही सांप?

—बहुत बड़ा सांप है।

सांप टेढ़ा-मेढ़ा भाग रहा था। नारायण ने सांप की पूंछ पकड़ ली। उठाकर उसे घुमाया और फेंक दिया। कहा, यह हरहरा सांप है। इसके जहर नहीं होता है।

—कैसे खूंखार हो तुम ! जाओ, हाथ धो लो।

—क्यों ? हाथ किसलिए धोऊं ? कुछ नहीं होगा।

—बड़े गंदे हो तुम।

नारायण को चोट लगी—मैं गंदा हूं ? नीरू थमी नहीं। बोली, तुम इन असभ्यों से क्यों मिलते हो ? इन भल्ला लोगों से ?

फिर बोली, पढ़े-लिखे बिना आदमी असभ्य ही रह जाता है। नीरू को घर पहुंचाकर नारायण फिर उसके थान नहीं गया। लेकिन शाम को जब नीरू लक्ष्मी दीदी को कलकत्ते की कहानियां सुना रही थी, तो वह अवाक् होकर सुन रहा था। सिर्फ चिड़ियाखाना और जादूघर ही नहीं, उसने स्वदेशी आन्दोलन की भी कहानी कही। नीरू ने गांधी जी को देखा है। सुभाष बाबू को देखा है। आटोग्राफ बही में उनके हस्ताक्षर हैं।

नारायण को मालूम नहीं था कि आटोग्राफ क्या होता है। मन ही मन थोड़ा संभ्रम हो आया था। इसीलिए कैलाशनाथ के मन्दिर में जब उसने पोखरे का फूल दिखाया, तो वह पोखरे को दौड़ा गया था।

पोखरे से जब वह ढेरों रक्तकमल और भेंट के फूल तोड़कर ले आया, तो वे लोग मन्दिर में नहीं थे। पूछताछ करके सरखेलों के यहां गया और ठिठक गया। नीरू रो रही थी। आंगन में खड़ी थी वह। मौसी परेशान होकर कह रही थी, अरे नहीं-नहीं। व्याह कहते ही व्याह नहीं होता। लड़का-लड़की रहने से बात होती है। नीरू !

नीरू ने एक नहीं सुनी। वह बोली, नहीं चाची। यहां से चलो। नहीं-नहीं। सरखेलों के यहां लोग उन्हें न्योता करके ले गए और नीरू से अपने लड़के का व्याह ठीक करने लगे। लड़के की दादी ने नीरू से भद्दा मजाक किया। मौसी से कहा, रुपयों की हमें कमी नहीं। कितने रुपये चाहिए, कहिए। मेरा नाती बौरा गया है। बौराने की बात भी है। कहता है, आज ही रात व्याह हो जाए।

नारायण उस लड़की की जिद और जोर देखकर अवाक् हो गया था। मौसी को लौट आने के लिए मजबूर होना पड़ा था। लक्ष्मी को भी। हृदय

रुक गया था। लेकिन उसने नीरू को, मौसी को कड़वी बात कही थी। कहा था, मेरी लड़की होती, तो चाबुक लगाता।

नीरू फुफकार उठी थी, मारिए तो देखूं ! बड़ा नुकसान हुआ आपका न ? कितने रुपये दलाली के मिलते ? मैं बिकने आई हूं ?

मौसी ने कहा, चल-चल बिटिया। लक्ष्मी, हम लोग बल्कि नारायण को लेकर चले चलें। आप लोग कुछ ख्याल मत कीजिएगा।

लाचार लक्ष्मी उठकर चली आई। घर आकर भी नीरू ने कुछ खाना नहीं चाहा। जिद पकड़ ली थी। यहां से भी चली जाएगी। बड़ी-बड़ी मुश्किल से मौसी ने मनाया। नारायण अवाक् हो गया था। उसके मन का संभ्रम और बढ़ गया।

रात में घर आकर हृदय ने फिर एक बार गाली-गलौज किया। नीरू को भी, मौसी को भी। मौसी से कहा, हुंः, मेरी मौसी आई हैं। अपनी गरज से आकर बहन-बेटी की गिरस्ती बिगाड़ने की कोशिश।

मौसी ने कहा, हृदय, यह क्या कह रहे हो बेटे !

—ठीक कह रहा हूं। आपने लक्ष्मी से नहीं कहा है कि नारायण को पढ़ाती क्यों नहीं हो ?

—यह कुछ गलत कहा है ?

—नहीं, बड़ा अच्छा कहा है। फिर जमीन-जिरात का लेखा लिया। एक नगड़े लड़के के खाने-पहनने में क्या लगता है, मालूम है ?

—क्यों नहीं। लेकिन उसी जायदाद से ही तो मेरे पिता का चला, उसके पिता का चला। उसका भी चलना चाहिए।

अबकी हृदय ने कहा, वह सब अब नहीं है। जमींदार ने नीलाम करा लिया। नौनिक बीघा ब्रह्मोत्तर था, वही है। मगर वह भी इंद्र देवता की कृपा पर। मेघों का पानी मिला तो फसल हुई, नहीं तो नहीं।

मौसी ने कहा, यह तो मुझे मालूम नहीं था बेटे। लक्ष्मी ने मुझे कहा, जगह-जायदाद सब है।

मौसी चुप हो गई।

नारायण ने यह खबर पहले सुनी।

कैसी तो चोट-सी लगी। ज़मीन से उसे प्यार है। हृदय के खेतों में खटता है। इसीलिए ज़मीन के बिक जाने की सुनकर बड़ा धक्का लगा।

ज़मींदार ने नीलाम करा लिया?

वह हृदय के यहां बड़ा हुआ। ज़मींदार से उसे कभी कोई कारबार करने की नौबत नहीं आई। फिर भी उन्नीस सौ पैंतीस का साल—इस समय के हवा-पानी से ज़मींदार-विरूपता उसके मन में, कलेजे में बसेरा डाले बैठा है, यह उसे मालूम न था, आज मालूम हुआ।

हृदय पर गुस्सा आया। पहला गुस्सा तो मौसी और उस लड़की को गाली-गलौज देने के लिए हुआ, दूसरा हुआ कि हृदय ने उसकी ज़मीन नीलाम करवा दी।

साथ ही साथ मानो एक परदा उठ गया। अपने ऊपर गुस्सा आया। वह मूर्ख है, बेवकूफ है, गधा है। खेत नीलाम हो गया होता, तो वहां से बराबर धान क्यों आता है? मूर्ख नहीं होता, तो धान लाने के समय अब तक जब-जब उसने घाट बलरामपुर आना चाहा, हृदय ने मना किया—उसने सुना क्यों?

—नारायण!

मौसी ने नीचे उतरकर आवाज़ दी थी, नारायण!

नारायण बरामदे में सोया नहीं था। कमरे में हृदय लक्ष्मी से झगड़ा कर रहा था। लक्ष्मी बार-बार पूछ रही थी, सच, ज़मीन नीलाम हो गई है?

हृदय ने दो-एक बार जवाब दिया, फिर नहीं दिया।

—कहो, सच?

—नहीं जानता। खच-खच मत कर। सोने दे।

नारायण उठकर बाहर चला गया था। जाकर गाड़ी पर लेट गया था। मौसी का गला सुनकर आया, पुकार रही थी मौसी?

—हां बेटे, तुम कह रहे थे, खूब तड़के ही एक बस छूटती है। मुझे वही

बस पकड़वा देना बेटे। हम लोग बल्कि वहीं बैठी रहेंगी। नीरू तो रो ही रही है। मेरा भी प्राण छटपट कर रहा है।

मौसी हांफ रही थी। हंफनी उठ गई थी।

नारायण बोला, वही ठीक है मौसी। चलो।—उसे भी बड़ा चैन-सा लग रहा था।

गाड़ी राम की है। हृदय की नहीं। हृदय के बैल बूढ़े हैं और दुबले हैं—नारायण उन्हें नहीं पसन्द करता। जी-जान से सेवा करने और चराने से भी उन्हें पुष्ट और मजबूत नहीं बनाया जा सका। खेती के दिनों उनसे बड़े कष्ट से हृदय की जुताई होती। लाख कहा, मगर लोग हृदय से नये, ताज़े और कच्ची उम्र के बैल नहीं खरीदवा सके। इसीलिए मौसी को लाने के लिए उसने राम की भैंसागाड़ी मांग ली थी। अपनी मौसी ठहरी न। वह राम के यहां गया, राम के दोनों भैंसे मांग लाया। कहा, मौसी, गाड़ी तैयार है, चलो।

सबसे पहले नीरू उतर आई थी। हाथ में सूटकेस। आते वक्त मौसी के हाथ में मिठीदाना की छोटी-सी टोकनी थी। अबकी थी दवा की पोटली। आशीर्वादी।

नीचे के कमरे के दरवाज़े पर खड़ी होकर मौसी ने आवाज़ दी, लक्ष्मी, हम लोग जा रही हैं। हृदय बेटे।

हृदय नहीं उठा। लक्ष्मी दरवाज़ा खोलकर बाहर आई। चुपचाप खड़ी हो। मौसी बोली, मैं जा रही हूं। कुछ ख्याल मत करना। जमाई से कहना, हां?

गरदन हिलाकर लक्ष्मी ने इशारे से कहा, कहेगी। आंचल की कोर से उसने आंखें भी पोंछी थीं।

यहां गाड़ी के सामने खड़ी थी नीरू। वह नारायण से कह रही थी, नारायण भैया, आपने जो उपकार किया? मेरा तो दम घुटता आ रहा था। मगर तुम लोगों का यह कैसा देश है! एक तुमको अच्छा देखा। तुम बड़े अच्छे हो। सुखी होओ तुम। अच्छे होओ तुम। तुम यहां मत रहना।

चले जाना। नहीं तो तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।

नारायण से जवाब देते नहीं बना। वह चुप ही खड़ा था। नहीं तो कहता, बुरे ही सिर्फ नहीं हैं नीरू, भले भी हैं। हृदय जैसे दो ही चार जने होते हैं।

और एक गिलास पानी पिऊंगा। बड़े गिलास से। थोड़ा पानी दीजिए। माथे में दर्द हो रहा है। नारायण ने कहा।

देखा, नारायण बदल गया है। चेहरा सख्त हो उठा है। आंखों के गढ़ों से लहू के ढेले-सी दो आंखें मानो बाहर निकल आना चाह रही हैं। दोनों हाथों की जैसे मुट्ठियां बंध गई हैं।

आवाज दी नारायण !

मुंह उठाकर फिर निगाहें। देखते हुए उससे कहा, गलत कहा था। आदमी से खूंखार और भयंकर कोई नहीं। सांप भी नहीं, बाघ भी नहीं। मुझमें, आपमें, सबमें हैं। पराधीनता, स्वाधीनता—कुछ भी हो, स्वभाव नहीं बदलता। नहीं बदला। व्यर्थ हो गई। गांधीजी व्यर्थ हुए, नेताजी व्यर्थ हुए —सभी व्यर्थ हुए। पुण्य झूठा, शांति झूठी। वह सब बेवकूफ के लिए सत्य है। मूरख के लिए सत्य है। जितने दिनों तक मूरख, बेवकूफ था…।

धीरेन पानी ले आया। बोला, पानी।

उसने पानी का लोटा लिया। सबसे पहले थोड़ा पानी माथे पर डाला। आंख-मुंह पर छिड़का। उसके बाद चुल्लू से पानी पीकर लोटा रखकर बोला, मेरा सारा विश्वास टूट गया। ओह, बड़ी कुटिल, कुत्सित, घिनौनी है यह धरती। भयंकर ! मैंने उस दिन नीरू से गलत कहा था। मैंने भला आदमी बनाना चाहा था, अच्छा देश गढ़ना चाहा था। लेकिन सब व्यर्थ गया। सब ! आप से तो कुछ होता नहीं। फिर भी, दूसरा कोई हथियार तो नहीं है मेरे पास।

मैंने कहा, शांत होओ। शांत।

वह बोला, शांत ! असमर्थ के लिए शांत होने के सिवाय उपाय क्या

है ?—हंसा वह ।

वह उठ खड़ा हुआ । कई चक्कर चहलकदमी करके फिर बैठा । उसके बाद बोला, वैसा ही विनम्र और शांत गला । कहा, बीच-बीच में होता है । उसके बाद, सुनिए ।

सारी दुनिया ही ऐसी है । फिर भी अपने देश की मिसाल नहीं । किसी का कलेजा ज़ख्म से खाली नहीं । ज़ख्म दगदगा रहा है । और आदमी का एक दल पैसे और प्रतिपत्ती के ज़ोर से कलेजे में दांत गड़ाकर लहू पी रहा है । दौलत को लक्ष्मी कौन कहता है, नहीं जानता । वही, वही सब कराती है !

बहनोई हृदय—शायद हो कि उतना अमानुष, जानवर नहीं था । मेरी संपत्ति का स्वाद पाकर हो गया । मेरे खेत की फसल ने उससे ललचाया, प्रलुब्ध किया ।

आपके मित्र—दो पुरुष के—नूटू मुख्तार का धनी होकर अमानुस होना सत्य है । लेकिन फिर इन्सान होना, मरते-मरते भी सत्य नहीं ।

खैर !

मौसी को बस पर सवार करा दिया । जाते समय मौसी ने कहा, नारायण, तू थोड़ा लिख-पढ़ बेटा । दुनिया में जीना है । समझदारी चाहिए । कम से कम कुछ सीख ।

नीरू ने कहा, तुम यहां मत रहना नारायण भैया । यहां से चले जाना । पढ़ना-लिखना । अच्छा, उस घर में रहने में तुम्हें शर्म नहीं आती—भल्ला लोगों के साथ मिलने-जुलने में, घूमने में ?

मौसी ने डांटा—नीरू !

—नारायण भैया ने बुरा कुछ नहीं किया है । वह मुझे अच्छा लगा, इसलिए कह रही हूं चाची ।

नारायण कुछ बोला नहीं । उन लोगों को बस पर बिठाकर लौटा, भल्ला के यहां गाड़ी रखी, भैंसों को बांधा और पुआल काटने लगा कि उसने चीख सुनी । हृदय गरज रहा था, हरामजादी, मारे जूतों के तेरा

मुंह चूर कर डालूंगा।

लक्ष्मी पर गरज रहा था। लक्ष्मी का गला नहीं सुनाई पड़ा। हृदय की आवाज़ सुनाई दी—यह ले···यह तो ले।

अबकी दीदी चीखी। हाथ की हंसिया फेंककर नारायण घर की ओर दौड़ा। सामने ओसारे पर ही दीदी गिरी पड़ी थी औंधी-सी और हृदय जूतों से उसे बेहिसाब पीट रहा था। कह रहा था, सिखाओ मुझे धरम, मुझे धरम सिखाओ !

उसने फिर जूता उठाया।

अचानक नारायण को क्या तो हो गया बाबू। जी, क्या तो हो गया ! दीदी को हृदय ने यही पहली बार नहीं पीटा था, पहली बार गाली नहीं दी थी—बहुत पिट चुकी है वह। मगर आज उसे क्या हो गया। ऐ···कहकर वह गरज उठा।

अपनी यह गरज उसे खुद भी नई-सी लगी। खुद चौंक उठा। हृदय ने पलटकर देखा। और जूता ताने आंगन में कूद पड़ा। नारायण को पीटेगा। वह चिल्ला रहा था, हरामजादा, सूअर का बच्चा, मुझे···

उसके मुंह की बात अधूरी ही रही—नारायण उसपर कूद पड़ा। चौदह साल के नारायण को इतनी ताकत है, हृदय नहीं जानता था, खुद नारायण भी नहीं जानता था। उसके धक्के से हृदय आंगन में चित गिर पड़ा। नारायण ने उसके मुंह पर, कपाल पर घूंसे और मुक्के जमाए और उठ खड़ा हुआ। लक्ष्मी तब तक उठ खड़ी हुई थी—अधनंगी-सी। चीखने लगी, अरे ऐ शत्रु, अरे ओ दुश्मन ! शैतान ! छोड़, छोड़ दे। मर जा, मर जा तू, मर जा।

जीवन में नारायण को यही पहली बार क्रोध का बोध हुआ। क्रोध का भी कमोबेश होता है बाबू। गुस्सा पहले भी आया था। आया और उसी समय उतर गया। जरा ही देर में हंस पड़ा, भूल गया। त नारायण शायद बच्चा था। बच्चों में भूलने की जो क्षमता होती आदमी के खेलने की उमर का भाव है। परमहंस देव का एक ग

'करके दया मुझे मां शिशु-सा करके रखना !'

नारायण का बचपन उसी दिन जाता रहा। सब पलट गया। पहले की बात होती, तो वह दीदी के पैरों पड़ता, जीजा जी के पांव पकड़कर रोता। जीजा जी मारते, वह मुंह सिए सहता। पीटना खत्म हो जाने पर, दांत पर दांत दबाए कुछ देर चुप रहता, पूरी तरह सह लेने के बाद राहत की सांस लेकर मन ही मन कहता, खैर, जान में जान आई! लेकिन उस दिन ऐसा नहीं हुआ। उसका गुस्सा हरगिज नहीं उतरा। उसने दीदी से कहा, मैं मर जाऊंगा और तुम ज़िंदा रहोगी ? चैन मनाओगी। उससे तो बल्कि तुम मरो। मैं आसानी से नहीं मरूंगा। यह हृदय मरे !

गुस्से का अंत नहीं था, परंतु उस हालत में भी वह मुन्ने का नाम नहीं ले सका।

दीदी ने कहा, निकल जा तू यहां से, निकल जा। फौरन निकल जा। वह हृदय को पकड़कर उठा रही थी। हृदय उठकर बैठा। सर थामकर बोला, पानी, सिर पर पानी डालो।

दीदी ने कहा, पानी ले आ।

नारायण बोला, नहीं। मैं नहीं लाऊंगा।

दीदी पागल की तरह दौड़ी आई। उसके गाल पर एक थप्पड़ मारा। कहा, जा। तू यहां से चला जा।—और वह पानी लाने के लिए दौड़ी गई। ी लाकर पति के सिर पर डाला, आंख-मुंह पर छींटा दिया। पूछा, और ?

—नहीं, मुझे सहारा दो।—लक्ष्मी का हाथ पकड़कर वह खड़ा हुआ। नारायण की तरफ ताका। उस निगाह के सामने नारायण और भी सख्त हो उठा था। और भी निष्ठुर हो उठा था। घृणा, क्रोध, हिंसा का अंत नहीं था। मन, नजर, अंग-अंग की अदा में, हर कुछ में।

हृदय डर गया था। या कि पत्रा बांचनेवाले जैसे लग्न विचारकर लेखा लगाते हैं, उसने उसे भगाने का लग्न सोच निकाला था।—उससे छुटकारा पाने का। हृदय चतुर है, बहुत ही चतुर। लंबा, छरहरा, दुबला

हृदय यात्रा में शकुनि का पार्ट करता था। शकुनि लोग भीम, अर्जुन से डरते हैं, उनके गुस्से में नहीं पड़ते। शकुनि मरता है सहदेव से। उसने समझ लिया, नारायण को वह नहीं पहचान सका था।

राजा परीक्षित—उन्होंने एक फल में कीड़े को देखकर उसे कीड़ा ही समझा था। वह तक्षक है, यह नहीं जान सके थे।

हृदय ने पहचाना। वह जानवर है। चालाक जानवर। जो ठीक समझ लेते हैं, प्रतिपक्षी होते हुए भी कितना खौफनाक है, वे पीछे हटते हैं। पीछे नहीं हटता है बाघ। उसके शक्ति होती है, दंभ होता है। वह सतर्क होता है। लेकिन सामने पड़ जाने पर या कि मुंह का कौर छीन लेने पर गरजकर, झपटकर धावा कर देता है।

बाघ नारायण ने पीछे देखा था, उससे भिड़ा था। उस दिन हृदय ने सयाने जंतु की तरह समझ लिया था, आदमी का यह बच्चा अब अड़ गया तो उसके कलेजे में, नजरों में सर्वनाश का नशा सवार हो गया। मरने का उसे डर नहीं। ताकत से उसे हराया नहीं जा सकता। लिहाज़ा मरना होगा।

ओसारे पर लेटे-लेटे उसने कहा था, उसका क्या है, उसे दे दो। वह चला जाए। अभी, तुरत।

दीदी ने कहा, तू अगर तुरत नहीं जाएगा नारायण, तो तू मेरे लहू से पांव धोएगा। तेरे पैरों पर सिर पटककर फोड़ लूंगी मैं।

नारायण ने कोई जवाब नहीं दिया। वह घर से बाहर चला गया। घर से ही नहीं, बस्ती से। राम के टोले भी नहीं गया। पहनावे में एक धोती और बदन पर गंजी थी। सर पर गमछा बंधा था, गाड़ीवानों जैसा। कुरता एक था उसे। वह कुरता पहनता नहीं था। गंजी भी नहीं पहनता था। मौसी के साथ गया था, इसलिए पहन ली थी। उतारने का मौका नहीं मिला। पैरों में हृदय के पुराने सैंडिल थे। उन्हें उसने उतार दिया, उतारकर फेंक दिया। कपड़े की गांठ में दस रुपये बंधे थे, शायद उसके भाग्यविधाता ने पहले से ही जुटा दिए थे।

उसने कहा, कहना भूल गया था, नीरू ने जब कहा था, कैसा है तुम लोगों का देश ! मेरा दम अटका आ रहा था। एक तुमको अच्छा पाया। मूर्ख होते हुए भी तुम अच्छे हो। तुम यहां मत रहना, यहां से चले जाना, नहीं तो आखिर तुम भी ऐसे ही हो जाओगे।

इसके बाद भी मौसी से कुछ बातें हुई थीं। बस पर चढ़ते समय अपने पेट के पास के आंचल से दस रुपये का एक नोट निकालकर मौसी ने उसे दिया था—इसे रख लो बेटे !

नारायण ने आश्चर्य से कहा, यह तो दस का नोट है मौसी !

—हां दस का ! तू रख तो। अपने ही पास रखना। किसीको देना मत। दीदी को भी नहीं। मैं तेरी सारी हालत समझ रही हूं—नीरू ने ठीक ही कहा है, बढ़ाकर नहीं बोली है, तू बड़ा भला है। भले लोग बेवकूफ होते हैं। रख ले।

—नहीं मौसी।

—नहीं, नहीं। तू हम सबको कैलाशनाथ ले गया, ले आया। फिर यहां ले आया। गाड़ी का किराया देना पड़ता तो कितना लगता ? ले !

पुतले-जैसा ही उसने नोट ले लिया था।

जानते हैं ? आदमी है न ! रास्ते में कई बार उसने नोट को देखा। फिर उसे टेंट में बांध लिया। सोचा था, भैंसों को बांधकर नोट को वह राम के पास रख जाएगा। नहीं तो, उसे पता था, जीजा जी छोड़नेवाले नहीं, नंगाझोरी लेंगे। मन ही मन उसने रुपये को खर्च करने का हिसाब भी लगाया था। तीन रुपये राम को देगा—इसलिए कि उसकी गाड़ी ली थी। उसे देना होगा। बाकी रुपये रख देगा। चैत-संकरात आ रही थी—गाजन का मेला। मेले से बीरेन के लिए खिलौना खरीदकर लाएगा। बीरेन—उसका भानजा। दीदी का लड़का। बीरेन नाम उसका नारायण ने ही रखा था। यह नाम उसे बहुत अच्छा लगता। यही सब सोचते-सोचते वह आया, भैंसों को बांधा, पुआल काटने लगा कि भावना का छंद टूट गया, हृदय का भट्ठा गाली-गलौज और दीदी की चीख सुनकर। राम के पास

रुपये रखने की नौबत नहीं आई।

उस रुपये की याद आई नदी किनारे पहुंचने पर। याद आते ही कलेजे को बल-सा मिला। वह नदी के घाट पर उतर पड़ा। पलटकर पीछे नहीं ताका। नदी का बालू, घुटने-भर पानी—पार करके वह तेज़ी से बढ़ चला। आकर उस पार को ताकते हुए नदी के किनारे वह कितनी देर बैठा था, ठिकाना नहीं। बस के भोंपू से होश आया।

बस उस समय पड़ाव पर थी—पांच मील दूर के पड़ाव पर मुसाफिरों को उतारकर फिर लौट आई थी। दो घण्टे बाद फिर खुलेगी। पांच मील की राह में चार मील जाकर उतर जाने के बाद, पूरब की ओर चलने से तीन मील का रास्ता। खेतों के रास्ते मे कुल मिलाकर चार-पांच मील की दूरी। रेल से एक स्टेशन जाने पर दो मील का रास्ता। जाए ? बस पर सवार हो ? नः। पैदल चलने से बचने के लिए वह इन दस रुपयों में से कुछ भी खर्च नहीं करेगा। लेकिन खाना होगा। बस-पड़ाव पर क्लीनर से उसने नोट को भुना लिया था।

आज भी याद है नारायण को, उसने पांच रुपये का एक नोट लिया था। और चार रुपये, एक रुपये की रेज़गारी।

अद्य भक्ष्यो धनुर्गुण: वाली कहानी में कम्बख्त स्यार ज़्यादा हिसाब के मारे मरा था। नारायण नहीं मरा। वह बच गया। उसने चार पैसे की मूढ़ी ली, भिगोकर भर पेट खा लिया।

उन्नीस सौ पैंतीस का साल—चीज़-वस्त सस्ते थे। बहुत-बहुत ही सस्ते। चार पैसे में सचमुच ही भरपेट खाया था।

राम भल्ला किस्सा सुनाता—छुटपन में वह दोनों भाई कुल चार पैसे लेकर गाजन के मेले में गए थे। एक पैसे का दो मंडा और तीन पैसे की मुढ़की लेकर दोनों भाई भरपेट खाकर खत्म नहीं कर सके थे। एक कुत्ता सामने टुकुर-टुकुर ताक रहा था। बाकी जो बचा, सब उसीको डाल दिया। उसका भी पेट भर गया था।

सुनकर सभी हंसते। राम का मखौल उड़ाते। राम कहता, भगवान कसम।

नारायण भी भगवान की कसम खा सकता है।

उसने खेतों की ही पगडंडी पकड़ी। रास्ता ठीक मालूम नहीं, लेकिन एक चिह्न उसका है। एक झील। कोपाई नदी के मुंह पर एक झील। बहुत बड़ी झील। उस झील को बायें छोड़ते हुए बढ़ने से कोपाई नदी मिलती है, नदी पार करते ही घाट बलरामपुर। गांव के छोर पर ही उसका घर।

झील बहुत दूर से दिखाई पड़ती है। एक बात है, सामने मत देखो, ऊपर देखो। नारायण भी वैसे ही चल रहा था।

एक समय ओर-छोरहीन मैदान में खड़े होने पर उसे आसमान में हज़ारों हजार पंछी उड़ते दीखे—झुंड के झुंड।

बचपन में उसने पछियों का ऐसा उड़ना देखा है। इतने दिनों के बाद, लम्बे छः साल के बाद, नया-सा लगा। अच्छा लगा। उसने सामने की ओर देखा। हां, वही तो—धूप की छटा में पानी चिक-चिक कर रहा है। रह-रहकर रोशनी की चमक आंकी-बांकी-सी कांपकर दौड़-दौड़ जाती है। फिर एक झिकमिक—वह भी दौड़ रही है। कोई पीछे-पीछे। कोई दायें, कोई बायें। हवा का खेल, नारायण को यह बात भली तरह मालूम है। नदी-माटी, पेड़-लता, इन सबसे उसकी कब से मिताई है। खड़ा-खड़ा देख रहा था वह।

आसमान में मुट्ठी-मुट्ठी अपराजिता और तगर के फूल बिखेर दिए हैं। बह रहे हैं, तिर रहे हैं।

चिड़िया। सफेद सब बड़ी बतखें। काली बन-बतखें, और-और जात की। उसे यह सब कुछ गज़ब का अच्छा लगा। इतनी चिड़ियां वहां नहीं थीं। कितनी चिड़ियां, कितनी तरह की बोली। कितना पानी। पानी में प्रकाश, आकाश। चारों ओर मैदान। अहा!

कि एक ऊंची और कठोर आवाज़ में वह चौंक उठा। आवाज दौड़ती

हुई चारों ओर चली जा रही है, दूर, और दूर। लेकिन काहे की आवाज़! ऐसी सख्त, कठिन आवाज़। मन चौंक उठता है। बन्दूक। ओ।

वह, चिड़ियों के झुंड में से आसमान से गिर रही है चिड़िया—माटी की ओर।

कौन है रे? ओः, ये आदमी कैसे हैं?—पाषंड, लोभी, निर्दयी! कुछ देर खड़ा रहा। जी में हो आया, वह यहीं रहेगा, और इन चिड़ियों को किसीको मारने नहीं देगा। उसके बाद झील में उतरकर उसने स्नान किया। गमछा पहनकर देर तक बैठकर उसने कपड़ा सुखाया और तब गांव की ओर रवाना हुआ।

नारायण ने कहा, उस दिन सारा परिचय जाना नहीं जा सका। इंतज़ार किया था। जब वह गांव में पहुंचा, तीन पहर बेला हो चुकी थी। दूर से रेल की आवाज़ आ रही थी। ज़्यादा दूर नहीं; स्टेशन गोकि दो मील दूर है, लेकिन एक मोड़ है लाइन का, वह मोड़ मील-भर पर है। वह गाड़ी अभी भी है। जिसे तीन बजे की गाड़ी कहते हैं, जाती है साढ़े तीन बजे। घाट से चलकर अपना घर पहचानने में उससे भूल नहीं हुई। छप्पर पर नाम को ही फूंस था। छप्पर के नीचे ही दीवाल के ऊपर का हिस्सा बहुत जगहों में टूट गया था। किवाड़ नदारद। खिड़की नहीं। आंगन के चारों ओर चहारदीवारी नहीं। आंगन में झाड़ियां उग आई थीं। ओसारा टूटा-फूटा, चार खूंटों में से एक गायब, एक मचक गया था। झाड़ियां पार करके वह उसी टूटे-फूटे ओसारे पर जाकर पलस्तर गिरी रूखी दीवार से सटकर बैठ गया।

उसका अपना घर! मौसी और नीरू की याद आई। वह एक चिट्ठी लिखेगा—लिखेगा कि मैं चला आया हूं। तुम्हारी बात रक्खी—चला आया। सचमुच खूब अच्छा लग रहा है। हो टूटा-फूटा! बड़ा अच्छा लग रहा है। बड़ी अच्छी जगह है। सुन्दर झील। सुन्दर खेत-बैहार। सब कुछ सुन्दर।

३

जानते हैं, नारायण ! नारायण ने कहा, अपने इस बोध में प्यार है। देश सचमुच ही सुंदर है। खूब सुंदर। वह झील इस इलाके की छाती के लाकेट-सा है, कालापन लिए झकमक एक पत्थर जड़े लाकेट-सा। बतखें जब उनपर बैठी होती हैं, तो लगता है, उसपर छोटा-छोटा सफेद-काला पत्थर जड़ा हुआ है। छोटी-सी नदी। हृदय के इलाके से पेड़-पौधे कम। हृदय के वहां की माटी यहां से अच्छी है। वहां की नदी में मगर नहीं हैं। यहां मगर हैं। आप या और दूसरे लोग कौन-सी जगह को अच्छा कहेंगे, नहीं जानता। लेकिन नारायण को लगा, यह इलाका उस इलाके से अच्छा है, सुंदर है।

लोग बड़े अच्छे लगे। बहुत अच्छे। पहले ही दिन वह दीवाल से लगकर बैठा था। काफी चला था, सो थकावट से आंखें लग गई थीं। अचानक किसीने पुकारा—वहां कौन बैठे हो ? सुनते हो ? अजी ओ !

उसने आंखें खोलीं। पचीस-तीस साल के एक काले जवान को देखा। उसके हाथ में हुक्का था। कंधे पर गमछा। घर के सामने आंगन के उस पार खड़ा पुकार रहा था। उसने कहा, मैं हूं। मेरा नाम नारायण है।

—नारायण ? कौन नारायण ?

—नारायण गुसाईं। यह घर मेरा है। मेरे पिता का…।

—तुम गुसाईं जी के लड़के हो ?

—हां।

—गज़व है ! आए कव जी ? ऐं ! तुम तो कभी आते नहीं।

—मैं आ गया हूं। यहीं रहूंगा।

—रहोगे ? नारायण होकर आप आए हो ?

—मैं अव कभी वहां नहीं जाऊंगा।

ज़रा चुप रहकर उस आदमी ने कहा, यह तो अच्छी वात है। तो वहां बैठे क्या कर रहे हो ? कुछ खाया-वाया है ?

—खाया है।

—नहीं। तुम्हारा चेहरा मुरझाया हुआ है। आओ, आओ, मेरे यहां चलो। हम मंडल हैं। तुम्हारे पिता जी के यजमान। मेरा नाम विपिन मंडल है। आओ, आओ। यहां सांप-वांप, चूहे-नेवले का अड्डा हो गया है। रहोगे तो हम लोग ही सब कर-करा देंगे। अभी मेरे यहां चलो। कुछ खा लो।

विपिन मंडल के घर की औरतों ने उसके जतन में कुछ उठा नहीं रक्खा। विपिन की मां ने कहा, अहा, ठाकुर देखने में कितने अच्छे हुए हैं, जैसे वलराम हों। काले होते तो किसन कहती।

उसे चूड़ा, दूध, गुड़, केला खाने को दिया।

विपिन की स्त्री चीनी ले आई थी। सास ने कहा, नहीं-नहीं, नया गुड़ हुआ है, वही दो। हां वेटे, गुड़ खाओगे कि चीनी ?

नारायण को गुड़ पसन्द है। वह वोला, गुड़ ही अच्छा है।

—यह बात ! ब्राह्मण के लड़के हैं। ब्राह्मण लोग पहले चीनी नहीं खाते थे। कहते, वाप रे ! घिन लगती है।

विपिन ने कहा, नहीं जी। वह तो सफेद नमक के लिए कहते थे, चीनी के लिए नहीं।

—क्या पता ! कहते थे न ! उसके वाद वोली, अच्छा हुआ, तुम आ गए। घर पड़ा रो रहा था। समझे ? हम लोगों का अच्छा हुआ, गांव में पुरोहित नहीं है। वाम्हण सव स्कूलों में पढ़ रहे हैं। वूढ़ों को वड़ा घमंड है। अच्छा, हां वेटे, पूजा-पाठ तो जानते हो न ?

नारायण ने झूठ नहीं कहा। कहा, नहीं। नहीं जानता। अभी तक जनेऊ नहीं हुआ है।

—जनेऊ नहीं हुआ है! हाय राम! मूछें निकलने को हैं। अरे ओ विपिन!

विपिन ने कहा, हम लोग गांव में चंदा करके जनेऊ कर देंगे। इसी बैशाख में कर देंगे।

खाने के बाद विपिन ने कहा, चलो, बस्ती में सबसे मिल लो। वह उसे गांव घुमा लाया था। सबने—सबने उसकी आवभगत की। कहा, आओ। यहीं रहो। फिक्र किस बात की है।

वहां के धनीराय बाबू के यहां भी गया। राय बूढ़े हैं। आंखों पर ऐनक रखकर उसे देखते हुए बोले, आखिर आए तो, मगर देरी करके आए। तुम्हारे बहनोई ने तो एक प्रकार से सब साफ कर दिया है। लेकिन खैर। समझे विपिन, कोई ठिकाना तो कर देना होगा। रसोई बना सकोगे? आता है रसोई बनाना?

नारायण को चोट-सी लगी। रसोई? रसोइये का काम?

नीरू की याद आई। उसने कहा, नहीं।

विपिन ने कहा, सब मिलकर जनेऊ करा दीजिए। इसके पिता हम सबका पूजा-पाठ कराते थे। जनेऊ के बाद वही कराएगा।

बूढ़े राय ने कहा, जनेऊ नहीं हुआ है? यह तो खासा मर्द हो गया है। खैर, जनेऊ करा दो। मैं कुछ दूंगा।

वहां से महाचार्य के यहां गया। उसे विशु की याद आई। विश्वबन्धु। बचपन में दोनों बड़े दोस्त थे। विश्वबंधु को देखकर वह अवाक् हो गया था। नये सिरे से परिचय करने के पहले ही अवाक् हो गया था। विश्वबंधु ओसारे पर लालटेन की रोशनी में कविता पढ़ रहा था। नारायण ने उस दिन एक दुर्बोध्य भाषा ही सुनी थी, समझ नहीं सका था।

विपिन से उसका परिचय पाकर विशु ने कहा, नारायण! वही नारायण! तुम नारायण हो!

—हां। नारायण टुकुर-टुकुर उसको ताकता रहा।

विशू ने कहा, बैठो।

—क्या पढ़ते हो तुम ?

—दर्जा नौ में पढ़ता हूं।

—दर्जा नौ में ?

—और तुम ?

—मैं तो नहीं पढ़ता।

—नहीं पढ़ते हो ?

—नहीं।

—अरे ! यह क्या ? बड़े होकर करोगे क्या ?

नारायण ने कहा, खेती करूंगा। खेती मैं बहुत अच्छी कर सकता हूं।

विपिन ने कहा, और हम लोगों का पूजा-पाठ कराएगा।

विश्वबंधु चुप बैठा था। विश्वबंधु के पिता बाहर निकले। बड़े स्नेह से कहा, अच्छा किया। अपने गांव में आ गए, बहुत अच्छा किया। रहो। चिंता नहीं। सब कुछ होगा।

दुनिया में दुखीरामों का हो, चाहे सुखीरामों का, जो भी होता है, वह वे खुद करते हैं। सुखीराम लोग सबसे ज़्यादा करते हैं, वह भी खुद ही करते हैं। दुखीरामों का थोड़ा-बहुत जो होता है, उसे भी वे खुद ही करते हैं। जो नहीं होता है, वह कुछ बुद्धि के दोष से, और बाकी लोग नहीं होने देते हैं। उस समय नारायण इस बात को नहीं समझता था, लेकिन उसने दूसरे का भरोसा भी नहीं किया। उसने आप ही करना शुरू किया था। दूसरे ही दिन सवेरे उसने विपिन से कहा, मंडल, मुझे एक कुदाली और एक दाव दोगे ?

—क्या करोगे ?

—अंगना को साफ-सुथरा करूंगा।

विपिन हंसा—तुम साफ-सुथरा करोगे ? कर सकोगे ?

—कर सकूंगा। तुम दो तो।

—तीसरे पहर। तीसरे पहर हम पांच आदमी जुटाकर करवा देंगे।

हंसकर नारायण बोला—तब तक मैं थोड़ा-सा करूं···

—ठीक है, लो। मगर होशियार भैया, सांप-वांप हो सकता है।

सांप-वांप दो-चार। नहीं, एक गेंहुअन, दो चित्ती, एक सुग्गापंखी वह एक ही पहर में मार चुका। और तीसरे पहर तक वह लगभग आधा साफ-सुथरा कर चुका। घास-पात को एक गढ़े में डाल दिया, खाद होगी। अकवन आदि के कुछ बड़े पौधे थे, उन्हें काटकर अलग रख छोड़ा। सूखने पर जलावन होगा।

उस रोज़ विश्ववंधु ने न्योता किया था खाने का। रात को वह मंडल के यहां सोया। सवेरे जब वह काम में जुट गया था, तो विश्ववंधु स्वयं न्योता करने आया था।

—नारायण!—नारायण को वह देख नहीं पाया था—या देखा भी तो घास-पत्तों के बीच धूल सने नारायण को वह पहचान नहीं सका। सोचा, मजूरा है। उसकी पुकार सुनकर नारायण के उठ खड़े होते ही विश्ववंधु ने ताज्जुब के साथ कहा, तुम खुद सफाई कर रहे हो?

हां।—वह हां एक बहुत ही सहज और मामूली हां। न तो उसमें पौरुष का अहंकार था, न उसमें मजदूर का काम करने की जरा भी शर्म थी।

—वह क्या है? सांप!—नारायण ने उस समय तक पहले ही सांप को मारा था।—यह तो सुग्गापंखी है। आंख खा जाता है।

—हां सुग्गापंखी है। अकवन के पेड़ में लिपटा था। आंख नहीं खाता। झूठ है। मैंने ही पहले मारा।

—कैसे मारा? वह तो उड़ता है।

—एक ढेले से मारा। इसे लाठी से नहीं मारा जाता। उड़ता नहीं है, उछलता है। एक से दूसरे पेड़ पर कूद जाता है। लोग कहते हैं, उड़ता है। अजी, डैना हुए बिना भी उड़ा जा सकता है?

एड़ी से चोटी तक उसे देख करके विश्ववंधु के आश्चर्य की सीमा

नहीं थी। उसकी बांह पर हाथ रखकर बोला, पेशियां कितनी सख्त हो गई हैं! बड़ी ताकत है बदन में न ?

अबकी नारायण खासे अहंकार से हंसा था।

विश्वबंधु ने कहा, आज तुम मेरे यहां खाना। मां ने कहा है।

दो बजे के करीब वह नहाकर खाने के लिए गया था। विश्वबंधु घर पर नहीं था। वह वहां से कोस-भर दूर हिरनहाटी के स्कूल में पढ़ने जाता है। विश्वबंधु के पिता जी खा-पीकर सो चुके थे। मां बैठी हुई थी। उसे बड़े जतन से खिलाकर बहुतेरी बीती बातें कहीं। उसकी मां की बात। उसके बचपन की बात। उसकी मां से विश्वबंधु की मां का सखी का नाता था। याद आता है, विश्वबंधु की मां को सखी-मां कहना सिखलाया गया था उसे।

सखी-मां उसके साथ आई। घर की सफाई कहां तक हुई, कैसी हुई—देख गई। और देखकर अवाक् रह गई। इतना ही नहीं, उस समय मझोले कद के दो गेंहुअन सांप मरे पड़े थे एक ओर, उनके साथ एक चित्ती और एक सुग्गापंखी। वह घबराकर बोली, तुमने मारा ?

मुस्कुराकर बोला, जी।

—अरे बाप रे!

उसी वक्त विपिन उड़द की गाड़ी लिए खेत से लौट रहा था। उसने गाड़ी पर से ही देखा कि आधे आंगन की सफाई हो चुकी है। बोला, शाबाश! शाबाश! ठाकुर तो मामूली नहीं है मां जी।

विश्वबंधु की मां ने कहा, हां बेटे! जबर्दस्त लड़का है।

कहानी कहते-कहते गुसाईं ने बंद कर दिया। पूछा, अच्छा आदमी खूंखार ही पैदा होता है या खूंखार ही बन जाता है, बता सकते हैं ?

मैंने ज़रा सोचकर कहा, दोनों होता है।

—हां, दोनों। जो खूंखारपन लेकर पैदा नहीं होता, वह परिस्थितिवश थोड़ा खूंखार होता है, उससे ज्यादा नहीं। कामुक काम के साथ जन्म लेता

लोभी लोभ के साथ जन्म लेता है—जैसे सांप। जहर के साथ ही जन-
मता है।

नारायण को काम नहीं था, लोभ नहीं था, क्या तो था एक। उसमें खूब हो-हलचल, हंसी-खुशी का एक कुछ था। कहीं कोई गोलमाल होता कि वह दौड़ा जाता। कहीं भीड़ होती तो ठेल-ठेलकर देखने के लिए अंदर धंस पड़ता। सबसे आगे जाकर खड़ा हो जाता, ऐसा कुछ था। बहादुरी दिखाने का एक स्वभाव। यह कंगालपन से हुआ था? नहीं कंगालपन नारायण में नहीं था।

हां, दुखीराम लोग कंगाल ही होते हैं सुखीरामों का ऐश्वर्य देखकर, उनका प्रताप देखकर थोड़ा डरपोक भी होते हैं। नारायण दुखीराम तो था, पर उसमें इन दो में से एक भी नहीं था।

उसके बाद गुसाईं ने हंसकर कहा, छोड़िए भी। उस लेखा-जोखा का क्या करना! नारायण को हिसाब नहीं था, यही उसका हिसाब था।

दो दिन के बाद। ठीक दो दिन के बाद।

नारायण के आंगन की सफाई हो गई। उसने मिट्टी काटी, पानी डालकर कादो बनाया और पैरों से उसे गोदने लगा। थोड़ा-थोड़ा फूस मिला देने लगा। अब वह टूटी-फूटी दीवालों को दुरुस्त करेगा। जो जगहें बिलकुल ढह गई थीं, उन जगहों पर नये सिरे से दीवाल खड़ी करेगा। ऐसे ही समय हो-हल्ला-सा हुआ—जान गई, जान गई।—और, हत्-हत्—हट...

नारायण भागा-भागा गया। गांव में मर्द गेनिहर नहीं थे—ये भले लोग।
दो-चार बूढ़े और नारायण जैसे किसानों के लड़के। नारायण ने जाकर
देखा, गली के मुंह पर एक सांड़ खुरों से माटी कोड़ रहा है और सींग हिलाते
हुए फोस-फोस कर रहा है। गली दो घरों के बीच की पानी बहाने का क
भी है। उसका उधर का मुंह दीवार से बंद है। सांड़ के खदेड़ने से दो ब
भागकर उस गली में जा घुसी है; उस समय ख्याल नहीं रहा कि गली
वह मुंह बंद है। वह सांड़ गाय बाबुओं के यहां के किसीके श्राद्ध का

सांड़ है। बदमाश है। जैसा विशाल शरीर है उसका, वैसे ही उसके दो सींग हैं। इसके पहले एक सांड़ को उसने लड़ाई में प्राय: मार डाला है। एक किसान के बैल को सचमुच ही मार डाला है। जब वह पूंछ उठाकर रास्ते में दौड़ता है, तो दस-बारह आदमी लाठी लेकर खड़े न हों, तो उसे रोका नहीं जा सकता। उस समय लोग पीटते-पीटते उसे गांव से बाहर तक भगा आते हैं। वह उस झील के पास मैदान में रहता है। वहीं भरपूर घास और फसल खाकर राजा की तरह घूमता है। गांव की गायें वहां चरने को जाती हैं, तो उनके साथ-साथ घूमता है। बीच-बीच में कोई गाय उसकी संगिनी बनती है, तब किसान उस गाय को वहीं छोड़ देते हैं, क्योंकि गाय को लाने से हज़रत सांड़ भी साथ-साथ चले आएंगे। कई दिन तक उधर ही रहकर गैया खुद एक दिन घर चली आती है। उस समय सांड़ झील के दूसरी ओर चला जाता है। हुंकारता है। कभी-कभी गांव में घुस आता है। उस रोज़ इसी तरह से घुस आया था। जिन लोगों ने उसे गांव में आते देखा था, उन लोगों ने उसे खेद देने की कोशिश की थी, पर नतीजा उलटा निकला। उसने पूंछ उठाई और हुंकारते हुए उन लोगों का पीछा किया। लोग कतराकर बच गए। लेकिन दो बहुएं उसके सामने पड़ गईं। वे उस बंद गली में घुस पड़ीं। सांड़ भी गली में घुसा जा रहा था, लेकिन गली इतनी पतली और संकरी है कि कुछ दूर बढ़कर और आगे नहीं जा सका। पर इधर भी नहीं लौटता। मारे क्रोध के गली का मुंह रोककर खड़ा था और खुरों से माटी कोड़ते हुए फोंस-फोंस कर रहा था।

बहुत मनसूबे किए जा रहे थे। ऊपर से सीढ़ी उतारकर स्त्रियों को ऊपर उठा लेना चाहा था, एक स्त्री गिर गई। हलचल मची थी। पीछे से ये लोग सांड़ को जितना ही कोंच रहे थे, वह आगे ही बढ़ना चाहता था। नारायण ने आकर देखा उसने न हिसाब किया न किताब, बस एक बार देखा और दौड़कर घर के अंदर गया। एक अंटिया पुआल उठाई और जिस दीवाल से गली का मुंह बंद था, उसे फांदकर गली में उतर पड़ा। अपनी कमर से दियासलाई निकाली। थोड़ी-सी पुआल में आग लगाकर

ामने की ओर वढ़ने लगा। जलती पुआल में और भी पुआल दी। सांड़ शायद इस तरह से आग के सामने और कभी नहीं पड़ा था। वह गली से निकला और वेतहाशा भागा। उसके पीछे-पीछे दौड़ा नारायण। अव लाठी ले-लेकर पीछे के लोगों ने भी साथ दिया। सारी जनता के उल्लास का अंत नहीं था। लेकिन सवसे ज्यादा उल्लास नारायण को हुआ था।

लोगों ने कहा, खूव अकल है।

किसीने कहा, डकैत है। हिम्मत कितनी !

विश्ववंधु की मां ने उससे उस दिन कहा, इतना दुस्साहस मत किया करो वेटे ! किसी दिन मुश्किल में पड़ जाओगे।

नारायण ने कहा, नहीं। ऐसा न होगा यानी।

उस दिन खा-पीकर वह हिरनहाटी गया था। कई दिनों से विश्ववंधु के यहां खा रहा था। उसकी मां की सखी का लड़का—और फिर इन्हीं दो-तीन दिनों में वह उसे चाहने लगी थी। सवेरे से वह घर की मरम्मत में जुटा था, उसके वाद सांड़ के भगाने के वाद से काम नहीं हो सका। असीम उल्लास से वह हंसता रहा, अकेले हंसकर तृप्ति नहीं हुई—दूसरों के साथ हंसा। उसके वाद ही जी में आया, सवेरे-सवेरे नहाकर भोजन कर ले, उस वेला फिर जल्दी से काम में जुट पड़ेगा। खाने वैठा, तो पता चला, विश्ववंधु के पिता जी हिरनहाटी जाएंगे। काम भी है। यहां के लोगों को अक्सर हिरन-हाटी से काम रहता है। हाट, वाजार, डाकघर, स्कूल, डाक्टर, वैद्य—सव हिरनहाटी में हैं। विश्ववंधु के पिताजी का काम विश्ववंधु ही करता है, वह वहीं स्कूल में पढ़ता है। आज लेकिन उन्हें जाना है। विश्ववंधु के मामा परदेस में काम करते हैं। वह चार वजे की गाड़ी से इस स्टेशन से गुज़रेंगे गांव जाते हुए। गांव यहां से और भी चार स्टेशन पड़ता है। इस-लिए विश्ववंधु के मामा ने उन्हें स्टेशन पर मिलने को लिखा है। काम भ कुछ है।

विश्ववंधु के पिता जी इसीलिए जा रहे हैं। इसके सिवा आज हाट

है। नारायण को भी हो आने की इच्छा हो आई—हिरनहाटी देख आएगा। हिरनहाटी क्या तो शहर-सा है। पक्के के बड़े-बड़े मकान हैं। बाबुओं के एक हाथी है। नारायण ने हाथी नहीं देखा है। शहर भी नहीं देखा है। और एक धोती के बिना काम नहीं चल रहा है। एक ही कपड़े को सुखा-सुखाकर पहनने में बेहद कष्ट होता है। लोग देखेंगे। कैसी तो शर्म लगती है। वह झील में चला जाता है। गमछा पहनकर कपड़े को फींच करके सूखने के लिए फैला देता है, फिर नहाने जाता है। कमर-भर पानी, छाती-भर पानी, तैरने लायक पानी। ज़रा देर पानी को हिलोड़ता है। बतखों को भगा-भगाकर खेलता है। फैलाया हुआ कपड़ा जब सूख जाता है, तब वह पानी से निकलता है। उसके बाद लौट आता है। इसीलिए जी में हो आया कि एक धोती खरीद लेगा। उसने कहा, सखी-मां, चाचा जी के साथ मैं भी जाऊंगा। एक धोती खरीदनी है।

—रुपया है न ?

—है। मेरे पास नौ रुपये कै आने हैं। बीड़ी बनाने का कुछ पत्ता और तंबाखू, सूता ले आऊंगा। बीड़ी बनाकर बेचूंगा।

—तू भी गजब लड़का है ! अरे, रायों के यहां कह रहे थे, रसोई पकाना जानता है, तो काम कर न। उनके दामाद बाहर रहते हैं, तुम्हें उन्हींके पास भेजेंगे।

—नहीं सखी-मां, वह काम मैं नहीं करूंगा।

रसोई का काम उसे कैसे बुरा लगा, यह बात नारायण आज भी नहीं बता सकता है। जोकि उस रोज भी वह विश्वबंधु के पिताजी की गठरी हिरनहाटी से सिर पर ढोकर बलरामपुर ले आया था। विश्वबंधु के मामा ने स्टेशन पर अपने बहनोई को नये कपड़े-लत्ते से भरा एक सूटकेस दिया था। चमड़े का नया सूटकेस। पिछली बार विश्वबंधु जब दशहरे पर अपने मामा के यहां गया था, तो मामा के चमड़े के सूटकेस को देखकर लुभा गया था। उसपर बार-बार हाथ फेरा था उसने। पूछा था, मामा, कितनी कीमत है इसकी ?

मामा ने मुस्कराकर कहा था, अबकी अगर दरजे में अव्वल आए तो तुम्हें एक नया सूटकेस खरीद दूंगा। वादा रहा।

विश्वबंधु अव्वल आया था और माघ महीने में उसने मामा को चिट्ठी भी लिखी थी। मामा ने जवाब दिया था, सूटकेस तुम्हें जरूर मिलेगा। चैत में जब वह घर आने लगे तो सामान से भरकर उसके लिए सूटकेस लेते आए। स्टेशन पर विश्वबंधु भी था। सूटकेस लेते हुए विश्वबंधु के पिताजी ने कहा था, अरे, यह तो बहुत भारी है। क्या है इसमें ?

विश्वबंधु के मामा ने कहा, पत्थर की सिल और लोढ़ा है। दीदी की फरमाइश थी। मेरे यहां मिर्ज़ापुर का सिल देखकर बोली थी, इस बार जब आओगे, मेरे लिए एक लेते आना भाई ! अच्छी सिल है। नीचे वही है। और कुछ कपड़े हैं।

विश्वबंधु के मामा रेलवे में काम करते हैं। रहते हैं मुगलसराय में।

गाड़ी चली गई तो विश्वबंधु के पिताजी ने स्त्री को झिड़का, जरा औरतों का अहमकपना देखो। समझो जरा। अब करो एक कुली। बुलाओ बेटे, कुली को बुलाओ।

नारायण ने उसे उठाकर अंदाजा और विश्वबंधु से कहा, इसे मेरे सिर-पर उठा दो चाचा जी ! मैं लिए चलता हूं।

—तुम ?

—जी। थोडी ही दूर तो है। मैं इससे भी ज्यादा वज़न ढो सकता हूं। दीदी के यहां ढोया करता था।

विश्वबंधु को लज्जा आई थी। उसके पिता ने कहा, ठीक है। पैसे तुम्हीं ले लेना। चलो।

घर लौटकर उन्होंने चार आना पैसा भी देना चाहा था। लेकिन उसने लिया नहीं। उसने सिर झुकाकर कहा, नहीं सन्नो-मां। अपने घर भी कोई पैसा लेता है ? और वह ना कहकर भाग गया।

उस दिन रात को जब खाने आया तो विश्वबंधु के पास बैठा। विश्वबंधु

पढ़ रहा था। उस दिन उसे पढ़ने में काफी लगन थी। फर्स्ट होकर सूटकेस पाया है, कपड़े पाए हैं। दो कुरते।

नारायण बैठकर सुन रहा था।

याद है, उस दिन विश्वबंधु इतिहास पढ़ रहा था। पलासी की लड़ाई अंग्रेज़ी नहीं, बंगला में पढ़ रहा था। अलीवर्दी के बाद उसका नाती सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद की गद्दी पर बैठा। सिराजुद्दौला का नाम उसे मालूम है। एक नाम और उसे जाना-जाना-सा लगा—मीरजाफर। लेकिन कहानी उसे मालूम नहीं थी। विश्वबंधु पढ़ता जा रहा था, वह मुग्ध हो सुन रहा था।

विश्वबंधु की मां विश्वबंधु का एक कुरता ले आई। पूछा, नारायण, यह तुम्हारे बदन में आएगा।

कुरता नया ही था, लेकिन मामा का दिया हुआ नहीं। शायद घर में था। नारायण को लेने में हिचक नहीं हुई। हाथ में लेकर तजवीज़ कर उसने कहा, लेकिन आएगा नहीं सखी-मां। छाती में कसेगा।

—सो थोड़ा सख्त हो न!

—अच्छा—उसने पहना। सच ही बहुत सख्त हो गया बदन में।

सखी-मां ने पूछा, नारायण ने मेरे भाई को देखा?

—देखा। साहबी ठाठ।

—हां। रेल में बड़े ओहदे पर हैं। अभी काशी के पास हैं। मुगलसराय बहुत बड़ा स्टेशन है। उसके साथ जाओगे? कहूं मैं उससे? अभी यह-वह, रसोई-पानी करना, आगे चलकर रेल में ही तुम्हारी कोई नौकरी हो जाएगी। तुम्हारे चाचा भी रह रहे थे। ज़रा देर उनकी ओर ताककर वह बोला, नहीं सखी-मां। इस गांव को छोड़कर मैं कहीं नहीं जाऊंगा। कहीं नहीं।

दुनिया एक ही है बाबू। लेकिन एक ही दुनिया दिन की रोशनी में एक तरह की, रात के अंधेरे में दूसरी तरह की। दिन की रोशनी छिटकते-

छिटकते फूल खिलते हैं, चिड़ियां गा उठती हैं। आदमी जागते हैं, काम करते हैं, गीत गाते हैं; नदी-नाले, झील-तालाब में प्रकाश की छटा से चमक भर जाती है, कोई डर नहीं रहता। रात में वही धरती और एक किस्म की हो जाती है। अंधेरा होते-होते फूल मुरझा जाते हैं, झड़ पड़ते हैं; चिड़ियां डालों पर बसेरों में बैठी रहती हैं, चुपचाप। देख नहीं पातीं। उस उतनी बड़ी झील में उतनी-उतनी चिड़ियां, जो आसमान की काफी ऊंचाई पर उड़ती हैं—उड़ सकती हैं, वे असहाय-सी पानी पर तैरती रहती हैं। चांदनी रात में वे अवश्य खेतों में उतरती हैं, फसल खाती हैं। लेकिन अंधेरी रात में बेबस। आदमी और भी बदल जाता है। वह सोता है। सोते में सपना देखता है। अधूरी कामना का सपना। जो जगे रहते हैं, लगभग सभी दुश्चिंता से जगे रहते हैं, क्रोध से जगे रहते हैं, ईर्ष्या से जगे रहते हैं और जगे रहते हैं काम से। काम निंदा करने की चीज़ नहीं। उसीसे सृष्टि है—परंतु कामार्त स्त्री-पुरुष, दोनों ही पशु हैं। वहां आदिम पृथ्वी है। पृथ्वी पर जो दिन में सोते हैं, वे रात को बाहर निकलते हैं। सांप, स्यार, जीव-जन्तु। चोर-डकैत, खूनी···

ओः!

गुसाईं अचानक मानो कुछ को तिरस्कार कर उठा। तिरस्कार ठीक नहीं, उसमें आर्त्तनाद-सा था। सुई की नोक-सा औचक ही बेधनेवाला।

मैंने उसकी ओर ताका।

गुसाईं ने कहा, रात जो कितनी खौफनाक होती है···! ओः!

उसके बाद तीखा हंसकर बोला, प्रकृति का नियम है। आदमी क्या करेगा। लेकिन अंधेरे का सभी कुछ पाप नहीं, अन्याय नहीं। नहीं। काली की पूजा अंधेरी रात में होती है। महाफल मिलता है।

मैं समझ गया, वह क्या कहना चाहता है। लेकिन बोलने का साहस नहीं हुआ। हां, साहस ही नहीं हुआ।

महाफल उसे मिला कि नहीं, नहीं जानता। एक महामुहूर्त की बात रे रात के ज़िक्र में याद आई है—अंधेरे की चर्चा में।

अपने को जब्त करके जरा देर बाद वह बोला, रात को झील का पानी अंधेरे के साथ मिल जाता। चांद उगता तो चमकता। सर्दियों की चांदनी रात में कुहरा जम जाता। अनोखा एक दृश्य! वह भी तो लगभग दिन ही-सा।

शुरू में नारायण ने आकर इस इलाके को, गांव को दिन की दुनिया की शकल में देखा था। देखकर उसे उसने ऐसा चाहा था कि अपने को उसके साथ मिला देना चाहा था। मिट्टी, पेड़-पौधे, नदी-झील, सबसे बड़ा गहरा परिचय हुआ था उसका। उसके साथ आदमी। यहां सबसे पहले परिचय हुआ था इस झील से। उस झील से ज़्यादा अच्छा कुछ भी नहीं लगा। झील में नहाना उसने नहीं छोड़ा। और बतखों से खेलना। फिर माटी, फिर मनुष्य। घर बनाने गया तो माटी का परिचय मिला। वहां की माटी में बेहद बालू है। यहां बालू कम है। माटी का राग बहुत अच्छा। लोग भी अच्छे लगे। विपिन सबसे अच्छा। उसके बाद सखी-मां, विश्वबंधु विश्वबंधु के पिता। और-और लोग। रतन मंडल, देवू मंडल, बारू मंडल, घोतन नंदी, ठानूपाल—ये सब मंडल टोले के। भटचारज टोले के सोनू भटचारज, झंटू ठाकुर, बादल चटर्जी, पारू मुकर्जी, शिवू राय—सब अच्छे लोग हैं। धनीराय बाबू भी अच्छे आदमी हैं। हां, अच्छे। उसे सबने सहज स्नेह से अपनाया—शुरू में दो-एक दिन करके खिलाया। उसके बाद वैशाख महीने में उसका जनेऊ भी करा दिया। उसके पिता की जगह विश्वबंधु के पिता ही गोपेश्वर थान से उसका जनेऊ करा लाए। हाथ में दंड, घुटा सिर, गेरुआ वस्त्र पहने वह गांव को लौटा—विपिन की मां ने उसका मुंह देखा।[1] सोने की अंगूठी, छाता, जूता, कपड़ा, कुरता, थाली, गिलास, लोटा, पूजा के पात्र आदि भिक्षा-मां ने दिए। गांव की स्त्रियां घर आकर भीख दे गईं। पहले ब्राह्मण, फिर शूद्र। चावल, केला, हर्रे, जनेऊ—रुपया

---

१. ऐसा रिवाज है कि जनेऊ के बाद ब्रह्मचारी तीन दिन कमरे में बंद रहता है। सूर्य और शूद्र को न देखे। चौथे दिन तड़के निकलता है, तो कोई शूद्र उसका मुंह देखता है। वह उसका भिक्षा-बाप या भिक्षा-मां होती है।

अठन्नी, चवन्नी, । बहुत हुआ, रायों के यहां की महाराजिन—वह रायों की अपनी ही है—वह भीख दे गई। रायों के यहां से एक रुपया दिया था। सखी-मां ने सोने की एक अंगूठी दी थी।

विश्वबंधु पास ही था। रुपये-पैसे वही गिन रहा था। तीस रुपये से ज्यादा हुआ था। केले बहुत मिले, उसके साथ बताशे, कदमा और अरवा चावल—कोई आधा मन।

यहां के शुरू के तीन महीने जैसा उत्सवमय जीवन उसका पहले भी नहीं आया था, बाद में भी नहीं—फिर कभी आएगा भी नहीं।

उसकी ज़मीन, उसके पोखरे को विपिन ने नये सिरे से बन्दोबस्त कर दिया। जनेऊ की खबर पाने के बावजूद दीदी या हृदय ने खोज नहीं ली। नारायण ने भी नहीं परवा की। सिर्फ भानजे वीरेन के लिए बीच-बीच में उसका हृदय रोता था।

वह सांझ को रोता। जब दिन की हलचल खत्म होती, रात की महफिल नहीं जमी होती, ऐसे समय। वह झील के पास चला जाता। बैठा रहता। मन रोया करता। झील के किनारे तीन बार जाया करता। एक बार सवेरे।

भोर होते ही वह दौड़ पड़ता। बेतहाशा दौड़ता। वहां जाते ही घास के जंगल में छिपाकर रक्खा हुआ एक टिन और लाठी निकालकर जी-जान से टिन पीटता। बतखों को जगाकर उड़ा देता। बतखें उस समय गले और पखनों के बीच मुंह गाडकर पानी पर बेबस-सी तैरती होतीं। यह समय शिकारियों के शिकार का सबसे अच्छा समय है। बेखबर सोती बतखों के पीछे से पानी में पैर दबा-दबाकर जा करके रेंज में आते ही गोली छोड़ देते।

इसके बाद बेला हो आती तो बतखें बीच में चली जातीं। सतर्क निगाहों ताकती हुई तैरतीं, खेलतीं, उड़तीं, फिर बैठतीं। कहीं से भी कोई छाया दिख जाने या दूर से कोई आवाज होने या कि बीड़ी-सिगरेट की

१ [illegible] मिठाई—बताशे [illegible] अन्दर में [illegible]।

बू-मिली हवा नाक में लगने से ही कैंक-केक करके आसमान में डैने फैलातीं। चक्कर मारतीं। इधर से उधर—सो कोई डेढ़-दो मील। याकि बीच में बैठतीं--जो जगह चारों तरफ के किनारे से पौन या आधी मील हो। जहां बंदूक की गोली नहीं पहुंच सकती।

इसके लिए दो-चार जने से कहा-सुनी भी हुई है उसकी। असल में उसने बकवाद नहीं की, उसने कहा, महाशय जी, झील के किनारे टिन बजाकर मैं गीत गाता हूं, इसमें आपका क्या ?

किसी विशिष्ट व्यक्ति को देखने से पूछता, बाबू, एक बात कहूं। इन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है ?

बात गांव तक पहुंची। रायों के यहां पहुंची। भट्टाचार्यों के यहां पहुंची। वे हंसकर बोले, उसके दिमाग में कहीं कुछ ढीला है। वह ऐसी बात तो बोलेगा। क्योंकि इन तीन महीनों के अंदर ही गांव के लोगों ने जान लिया—किसीकी बीमारी में रात को जागना हो, तो नारायण को बुलाना होगा; किसीके घर बच्चा हुआ है, दरवाजे पर ब्राह्मण को सुलाना है, तो नारायण को ही बुलाना होगा। उस दिन रात को मुखर्जियों के यहां विधवा फूआ बदहवास होकर 'बाबा गोपेश्वर-बाबा गोपेश्वर' कहकर चिल्ला रही थी—किसी भी उपाय से होश नहीं आ रहा था, डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी गया था, लेकिन एक प्रौढ़ आदमी ने कहा, अजी बाबू, यह बाबा गोपेश्वर थान में दोष होने के कारण हुआ है। वहां की मृत्तिका और फूल मंगवाओ। कौन लाए ? बाबा थान में रात को कौन घुसे ? फूल लाए···

ब्राह्मण के बिना काम नहीं चलेगा। नारायण ने कहा, मैं जाता हूं।

—जा सकेगा ?

—खूब। एक लालटेन दो। चला जाऊंगा। पांच पांव ज़मीन तो है।

और वह चला गया तथा डाक्टर के आने से पहले ही लौट आया। डाक्टर हिरनहाटी से आया था, गाड़ी पर, कोस-भर से। आते-जाते ढाई कोस की दूरी उससे पहले ही मार दी।

माथे में छींट नहीं होने से तो यह नहीं हो सकता। और जिसके माथे में ऐसी छींट होती है, आदमी उसे प्यार किए बिना भी नहीं रह सकता।

शूद्रों के टोले में तो उसकी और ज्यादा खातिर होती। वहां स्नेह और श्रद्धा दोनों। सच पूछिए तो उन्हीं लोगों में वास। आचार-आचरण, व्यवहार में वे ब्राह्मणों से छोटे नहीं, सिर्फ राय बाबू, विश्वबंधु के पिता जी को छोड़कर। फिर भी वे लोग ब्राह्मण के लड़के के नाते श्रद्धा करते। उसने अपने को वहां बेरोक उमंग से बहा दिया था। सांझ को कीर्तन मंडली में गा चाहे न पाए, सामने रहता। उनके विचार में रहता। उनके हुक्के से चिलम लेकर पीता। किसीके यहां सांप निकलता तो लाठी लेकर दौड़ पड़ता।

शाम को झील के किनारे से लौटकर वह एक बार विश्वबंधु के पास बैठता। विश्वबंधु पढ़ता, नारायण बैठा रहता। उसकी किताबें पलटता।

इसी बीच कब जो उसने उन्हें प्यार करके उनकी प्रतिष्ठा के मूलधन का स्वाद पा लिया था—इसका हिसाब वह ठीक-ठीक नहीं दे पाता—लेकिन उन तीन महीनों में ही पा गया था।

बेहिसाबी नारायण हिसाब में जितना ही कच्चा चाहे हो बाबू, यह हिसाब उसके आगे आज अत्यंत स्पष्ट है कि उसने भाव के घर में चोरी की थी, इसीलिए बीड़ी बनाने के व्यवसाय का इरादा उसे अच्छा नहीं लगा। उसने सोचा, एक किताब खरीदकर पूजा के मंतर सीखकर वह किसानों के टोले में पुरोहितगीरी करेगा।

सत्यनारायण की कथा सुनते-सुनते उसे बहुत याद हो गई थी : 'उचित दाम देकर दूकान से ली मैंने यह माला। हाथ-पैर फिर किस कारण से राजा, बंधवा डाला।' और फिर उस नाव के लौट जाने पर वणिक् की बेटी के प्रसंग में—'घुमा-घुमा फेंका वामा ने हाथों का परसाद'। यह सब कंठस्थ है उसे। कुछ मंत्र भी जानता है।—ओं विष्णु। नः, शूद्रों को नमो विष्णु, नमो विष्णु, नमो विष्णु कहलाना चाहिए। नमो अपवित्र पवित्रोवा सर्वावस्थां गतोपिवा। यः स्मरेत पुंडरीकाक्षं न बाह्य अभ्यंतर शुचि। हृदय जोड़ा कहता था, तर्पण के समय, बाप-मां के श्राद्ध के अंत में—जानी

न जानी, ले गुसाईं फूल-पाती। किताब हो तो हिज्जे लगा-लगाकर ठीक ही याद कर लेगा। और ठीक से याद करके ही कारज करेगा।

अपने एक पुरोहित रूप की भी कल्पना की थी उसने।

मूंछ-दाढ़ी ठीक से आई नहीं थीं। आने से मुंड़ाएगा। गले में जनेऊ रहेगा। कोंचा उलटकर कमर में खोंस करके कपड़ा पहनेगा। गांव में कंधे पर गमछा रहेगा, दूसरे गांव में जाने से चादर, बगल में छाता। चुटिया भी रक्खेगा, उसमें फूल खोंसेगा। इस कल्पना से उसे एक अजीब आनंद हुआ था। पिता की याद आई थी। उनके ऐसी ही पोशाक थी। ऐसा ही ढंग था। ज़मींदार की कचहरी में बैठने के लिए उन्हें अलग आसन दिया जाता था। मंडलों के टोले में मोढ़ा। ब्राह्मण टोले से भी लोग पत्रा बंचवाने आते थे।

उस आदमी के प्रति प्यार से लोगों ने ही जाने कब उसे एक अलग आसन दे दिया था, उस आसन को स्थायी कर लेने की इच्छा उसके अजानते ही मन में उभकने लगी। अजीब नशा है यह!

उसने एक दिन विश्वबंधु से कहा, बिशू, तेरे यहां पूजा की किताब है? इस बीच ये दोनों तुमसे तू पर उतर आए थे। बिशू ने कहा, पूजा की किताब?

—हां। जिसमें मंतर हों। पूजा-पद्धति हो।

—क्या करेगा?

—मंतर सीखकर पूजा-पाठ [illegible] [illegible] पिता जी की तरह। आखिर कुछ करना तो होगा! [illegible], यानी विपिन भैया की मां [illegible] कहती है, बेटे, ब्राह्मण हो, [illegible] हम लोगों की पूजा-वूजा कराओ। मैं जानता नहीं हूं, यह कहते [illegible] आती है रे!

बिशू ने कहा, पिता जी से पूछ देखूंगा। आजकल तो हम लोग यह सब करते-कराते नहीं हैं। [illegible] जी ने भी कभी नहीं की-कराई। मगर हो सकती है। मेरे जनेऊ के [illegible] पढ़ने के लिए एक दी थी। पूछ देखूंगा।

दूसरे दिन [illegible] उसे खुद ही दे गई थी—यह लो बेटे!

किताब मांगी थी। पूजा की पोथी। विशू के पिता जी को भी ठीक पता नहीं था। मैंने ठाकुर के घर ताक पर उठाकर रख दी थी। सीखो। ब्राह्मण के लड़के हो।

और दूसरे दिन सवेरे ही वह पूजा-पात्र लेकर पोथी खोलकर प्रातः संध्या करने बैठ गया था। लेकिन पोथी का एक अच्छर भी समझ नहीं सका—अनुस्वार, विसर्ग, रेफ लगे शब्दों के हिज्जे ठीक-ठीक लगा नहीं सका। किसी तरह पढ़ भी लिया तो जीभ से ठीक उच्चारण नहीं हो सका।

संध्या समय विशू से पढ़वा लिया था। लेकिन उससे भी सुविधा नहीं हुई। विशू ने कहा, तूने बताया कि दूसरा भाग पढ़ा था, भूल गया ? फिर से पढ़।

ज़रा सोचकर उसने कहा, हिरनहाटी से एक पहली पोथी, एक दूसरी पोथी, एक पहाड़े की किताब और स्लेट-पेंसिल कल मुझे ला देना।

घर गया। वहां से एक रुपया लाकर उसे दे गया।

४

एकाएक जैसे एक जादू हो गया ! इसके सिवाय और क्या कहूं ? वही घुटने तक मैली धोती, मैला कुरता पहने आदमी ने; विनीत शांत, मुझे बाबू कहने वाले आदमी ने कहा—

'ऑफ मैन्स फर्स्ट डिसओबिडिएंस, ऐंड दी फ्रूट ऑफ दैट फारबिड्न ट्री।'

इस पंक्ति को कहने के बाद गुसाईं ने कहा, इसके बाद यही हुआ बाबू ! पहली पोथी, दूसरी पोथी, पहाड़ा और सामने विश्वबंधु की मोटी-मोटी किताबें—बंगला, अंग्रेज़ी—फिर भला खैर हो ! रुका जा सकता है ? ज्ञान-वृक्ष का फल।

दूसरा थम सकता था, नारायण नहीं थम सका। तीन महीने में वह पूजा-पद्धति के मंत्र पढ़ने लग गया, मगर समझ नहीं सका।

विशू ने कहा, वर्गों में पढ़ाई जानेवाली कुछ और किताबें पढ़ लो। बड़े होने पर जब बुद्धि परिपक्व होती है तो पढ़ने में फिर कै दिन लगते हैं; यदि धुन सवार हो जाए !

तिसपर आज का युग। अखबारों का युग। अखबारों ने ही ज्यादा चाट लगा दी। उस चाट को गहरा कर दिया शरत् बाबू की किताबों ने। उफ्, कैसा नशा—कैसा !

छः महीने में पास की पूंजी चुक गई। तब तक कतकी धान तैयार हो आया। चार बीघे खेत में से दो बीघे कतकी धान अच्छा हुआ था। गुजारा

चलने लगा। विपिन ने कहा, नारायण भाई, इन दो बीघे में से एक बीघा में चना डालो। पांच कट्ठा में आलू। और बाकी में साग-सब्जी। तुम्हारा आलू बटाई पर मैं लगा दूंगा।

नारायण को खेती की धुन थी। वह उत्साह से जुट पड़ा। खेती और पढ़ाई। किताब लिए-लिए ही खेत को चल देता।

विपिन की मां के तकाजे से सत्यनारायण, षष्ठी, मनसा, लक्ष्मी-पूजा भी करता, लेकिन मन में उसे एक खटका होता रहता, सबका मतलब वह अभी भी साफ नहीं समझ पाता।

वह हिरनहाटी की संस्कृत पाठशाला में भर्ती हो गया। वहां शुल्क नहीं लगता। लेकिन तड़के ही उठकर जाना पडता। संस्कृत पाठशाला के पंडित जी सवेरे वहां पढ़ाते, दिन में स्कूल में हेडपंडिती करते।

नरः नरौ नराः—शुरू हो गया।

रात को विश्वबंधु के पास पढ़ना—वन मोर्न आई मेट ए लेममैन। दोपहर को बंकिम-शरत्। उन्नीस सौ छत्तीस का साल आया। लेकिन उस समय और कोई नहीं आया था। विभूति भूषण का नाम अभी-अभी सुना। विश्वबंधु एक दिन 'पथेर पांचाली' ले आया। नारायण ने उसे झील के किनारे बैठकर पढ़ा। बहुत अच्छी लगी। उस झील के पानी पर आकाश की छाया पड़ी, थी उस पार, किनारे के करीब, तट की हरी घास की छाया कांप रही थी। बीच-बीच में आकाश में उड़नेवाली चिड़ियों की छाया पानी के हल्के हलकोरों से टूट-फूटकर लंबी होकर मिल जानेवाली बहती माला-सी लग रही थी। मुझे दीदी के यहां अपने बचपन की बात याद आ रही थी।

उसके बाद विशू 'अपराजित' ले आया।

वह मन-माफिक नहीं मिली।

लगा, विश्वबंधु ने मिलती है। वह इम्तहान दे रहा है। पास तो करेगा ही। अच्छा लड़का है। कालेज जाएगा। अपू जैसा ही शांत और बुद्धिमान है। लेकिन उतना गरीब नहीं है। नः—वह भी नहीं मिलता।

मिलने की सबसे बड़ी बाधा था समय। अपू और मेरे विशू का समय अलग है। विशू और अपू की प्रकृति का थोड़ा-बहुत मेल है भी, मुझसे बिलकुल नहीं मिलता। अपू रात में सोता। निश्चित। मुझे नींद नहीं आती। मेरी नींद का समय जाता रहा था। ज्ञान-वृक्ष का फल खाने से नींद शायद ठीक नहीं आती। तिसपर समय मानो ऊमस की गर्मी का। बारिश नहीं—आसमान में बादल, दूर दिगंत में मेघ गरजते, हवा नहीं डोलती, गाछ के पत्ते स्थिर। रात में बाहर जीव-जन्तुओं का कोलाहल, सांप बेरोक घूमते फिर रहे हैं, फुफकारते हैं, मेढ़क भी टर्राते हैं, कभी-कभी सांपों के दांत की जांता-कल में दबे कराहते हैं।

उन्नीस सौ छत्तीस-सैंतीस से उन्नीस सौ चालीस का साल। नारायण के आगे वह कल आज भी कल जैसा स्पष्ट है। न सिर्फ नारायण की उस बस्ती में, उस इलाके में—बल्कि सारे बंगाल में, भारतवर्ष में, यही क्यों, सारी दुनिया में।

दिन के प्रकाश में फूले फूलों, चिड़ियों की तानों में अपनी-अपनी ख्याल-खुशी से काम में डूबे हुए लोगों के जिस इलाके, जिस दुनिया को उसने देखा था, उसकी रात की शकल उसने देखी। मनुष्य में उसने जानवर की, सांप, मेढ़क, खरगोश की शकल देखी। सब मानो चोरी-डकैती, व्यभिचार और पागलपन में माते हों।

सन् चालीस तक नारायण ज्ञानवृक्ष के फल को चबाता रहा, चबाता रहा। संस्कृत में उसने आद्य पास किया, मध्य पास किया। पर उपाधि नहीं मिली। संस्कृत अच्छी नहीं लगी, पुरोहितगीरी अच्छी नहीं लगी। पुरोहित बनने का संकल्प अच्छा नहीं लगा। संस्कृत के साथ उसने बंगला उपन्यास-कहानी ही नहीं पढ़े, सातवें-आठवें दर्जे की पाठ्यपुस्तकें भी पढ़ीं। और अखबार रोज़ नियम से पढ़ता। उधर तब तक उसके जीवन की ज़रूरतें बढ़ीं। किताब, कपड़े-लत्ते, जूते की दरकार हुई, बीच-बीच में यहां-वहां जाता-आता, दो-चार जने उसके यहां भी आते हैं। बगल के गांव के घनदा

बाबू कांग्रेस का काम करते हैं, वे अपने गांव आए हैं। नदी के उस पार देवीपुर में शिवू डाक्टर कांग्रेसी से वामपंथी हो गए। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की मेंबरी के लिए झगड़कर उन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया। उनके साथ अजय हाजरा की जमात जुट गई। बीच-बीच में शहर से हीरालाल बाबू आया करते हैं, हरिपदो आया करते हैं। ये लोग कभी-कभी आ जाते हैं। वह भी इन लोगों के पास जाता है। खर्च बढ़ गया है। कमाई होनी चाहिए। पुरोहितगीरी से नहीं चलता, उसके लिए उत्साह भी नहीं है। सोच-विचारकर उसने पाठशाला खोल ली।

हंसकर गुसाईं ने कहा, 'गणदेवता' का देबू गुरुजी कभी नारायण का आदर्श था।

इतने दिनों में उसने देखा कि चारों तरफ अन्याय है, चारों तरफ पाप है, पग-पग पर मिथ्याचार। दिन का हर पल कूट षड्यंत्रों के चक्कर में घूम रहा है; सबलों के हुंकार, निबलों के रुदन, हताशों के आक्षेप से हवा भारी हो उठी है। सांझ के बाद से रात व्यभिचार की उल्लासमत्तता में बढ़ती है। दुर्बलों की रुलाई जैसी बेबस स्त्रियों का रोना भी सुनाई पड़ता है, दीर्घ निःश्वासों का उत्ताप काल की घुटन को बढ़ाता है।

यह तो था ही! लेकिन नारायण इतने दिनों तक देख नहीं पाया, समझ नहीं पाया।

अंबुवाची में अखाड़ा होता है। कुश्ती होती है। उसमें एक नारियल या कुछ होता है। कुश्ती लड़कर उसे जीतना पड़ता है।

संतालों के ब्याह में एक मज़ेदार नियम है। रिश्ता हुआ, बातचीत हुई। लेकिन ब्याह बातचीत के पक्की होने से नहीं होता। लड़के वालों को एक दिन लड़की को छीनकर ले जाना पड़ता है। कैलाशनाथ के चड़क मेले में नारायण ने पहली बार जो यह देखा तो उसे डर लग गया था। डर लगने की बात ही थी। वह घुरन चरखी पर चढ़ने के लिए मेले के एक ओर खड़ा था। चरखी थमी। उसपर से तीन संतालिनें उतरीं। उन्हें थोड़ा-थोड़ा

चक्कर-सा आ रहा था। टलमला रही थीं। खिल-खिल हंस रही थीं। अंधेरा होता आ रहा था। सहसा जाने कहां से दो-तीन संताल दौड़े आए और उन तीन संतालिनों में से बीच वाली लंबी युवती को कंधे पर उठकर भागे।

दूसरी दोनों चीखकर बाकी संतालों से जूझ पड़ीं और शोर मचाने लगीं। देखते ही दूसरे संताल लोग आ जुटे। दो दल। एक इस तरफ, एक उस तरफ। कुछ देर कहा-सुनी हुई, हाथापाई भी कहिए चली और फिर हो गई। उसके बाद दोनों दल मिलाकर बैठे। वह लड़का और लड़की बंद आई। उन लोगों ने उस जवान से कहा, तू जब ज़बर्दस्ती इस लड़की को उठा ले गया, तो तू इससे ब्याह कर। क्यों री, इससे ब्याह करेगी?

लड़की ने कहा—हूं।

लड़के ने कहा—हूं।

उसके बाद एक तरफ के न्योते पर शराब पीने के लिए, भोज खाने के लिए दोनों तरफ के लोग उठ खड़े हुए।

नारायण ने यह देखकर उस दिन खुशी के मारे खूब तालियां पीटी थीं। बड़ा अच्छा लगा। लेकिन अब अच्छा नहीं लगता। वह नारायण अब नहीं रह गया था। कौतुक तो अब भी होता, पर उसमें प्रेम कहां?

लोगों का उपकार वह तब भी करता, पहले से ज़्यादा ही करता। सोचकर करता। लेकिन ,सच कहता हूं' कहकर नारायण आज बोला, विचार करके, सब कुछ चीर-चीरकर देखकर, कि फर्क थोड़ा हुआ है।

ये सारे लोग, जिनमें से हर एक के भीतर भेष बदले एक-एक जानवर छिपा है, उनमें से वही जो अकेले आदमी हैं, यह हो ही नहीं सकता, वह भी जानवर है। मगर वह सिंह है। सिंह राजा है न, विचारक है। वास्तविक सिंह का जो भी स्वभाव हो चाहे, हमारा शास्त्र यही कहता है।

हमारी संस्कृत पाठशाला के पंडित जी एक कहानी कहा करते थे।

वही, सिंह का मामा मम्बलदास
मारा शेर पचासों खास
हाथी के तोड़े हैं पाश
भीगे शेर खाने के लिए
जंगल में किया है वास। —वही कहानी

लंबी दाढ़ी वाला एक बकरा, जंगल एक टीले पर बैठा था। वर्षा का समय। एक भीगा बाघ सर्दी से कांपता हुआ, भूख से कातर होकर उस बकरे को देख वहां ठिठक गया। उस बकरे जैसी इतनी लंबी दाढ़ी उसने पहले नहीं देखी थी। सो, उसे शुबहा हुआ। उसने डपटकर पूछा, ऊंचे टीले पर घर, लंबी दाढ़ी बढ़ाकर, बैठा है निडर—कम्बख्त कौन है तू? इसपर बकरे ने जवाब दिया, मैं सिंह का मामा हूं। भीगे बाघ को खाने की टोह में इस टीले पर बैठा हूं। बाघ खुद ही भीगा हुआ था, लिहाजा वह चंपत हो गया। सिंह का मामा जो था! लौटते हुए उसने सिंह से यह घटना कही। कहा, महाराज, आपके मामा जी का एक अजीब इरादा है, भीगा बाघ खाएंगे। क्यों, सूखे बाघ को खाएं न! घटना सुनकर सिंह चकित रह गया, मेरा मामा! चलो तो देखें! आया। बकरे को देखकर बिगड़कर बोला, तूने बाघ से क्या कहा? कौन है तू? बकरे ने कहा, महाराज, निबलों की रक्षा करना सबलों का कर्तव्य है। दुर्बलों का एकमात्र वही आश्रय है। और अंत में कहा, वनेसिंह प्रभावेन अजाः चरंति निर्भये।

मनुष्य को प्यार करते हुए नारायण उस समय दुर्बल आदमियों का आश्रय हो पड़ा था। लिहाजा स्वाभाविक तौर पर उसने अपने को सिंह समझा था।

गर्दन हिला-हिलाकर गुसाईं ने कहा, उसके अंदर एक शक्ति थी। कहा तो, आदमी वह शक्ति लेकर पैदा होता है, लेकिन उसका तारतम्य क्यों होता है, यह नारायण को नहीं मालूम। किसीका कोई तथ्य उसे नहीं जंचता। उत्तराधिकार के सूत्र से भी मूल तक नहीं आया जाता। सिर्फ शक्ति ही नहीं, उसके साथ-साथ प्रवृत्ति, चरित्र। शक्ति और चरित्र में

नारायण ऐसा हो उठा था। दूसरी तरह का वह नहीं हो सका। याकि जिसके जीवन में काल वैशाखी[1] जैसा तूफ़ान उठता है दुर्योग का, उसका ऐसा ही होता है।

ज़रा हंसकर गुसाईं ने कहा, नारायण ने उस समय सिंह के केसर जैसे लंबे-लंबे बाल रक्खे थे। मूंछ-दाढ़ी—वह भी रक्खी थीं।

मैंने कहा, गुसाईं, एक बात कहूं?

वह बोला, कहिए।

कहा, नारायण क्या हार गया?

—ऐसा क्यों कह रहे हैं?

मैंने कहा, वह रेड सिगनल जलाकर बैठा है। उस रोशनी का जलना या ज़लने लगना तो अब शुरू हुआ है। तुम उसे व्यंग्य क्यों कर रहे हो?

ज़रा चुप रहकर कुछ सोचकर उसने कहा, नहीं।

—नहीं?—फिर से पूछ लिया।

उसने कहा, असल में व्यंग्य नहीं कर रहा हूं। मगर नारायण के बारे में सही बात कहनी पड़ेगी न? नारायण अब वह नारायण तो नहीं रहा। वह बदला। बिलकुल बदल गया। गंवई-गांव की नदी और झील के किनारे का जो लड़का बहार में घूमकर, पानी में तैरकर, भैंस की पीठ पर लेटकर, बालू पर पड़कर नीले आसमान की तरफ ताकते हुए बड़े आनन्द से दिन बिताता था—किसी भी बात से दुःखी नहीं होता था—यह नारायण तो वह नहीं है! बुद्धू-भोंदू जैसा आदिम काल के मनुष्य का जो मुखौटा उस-पर चढ़ा था, वह ज्ञान की जोत और युग के मन की मशाल की आंच से जल गया। अब वह इस युग का आदमी है। उसकी बातचीत का सुर अलग है, आंखों की निगाह दूसरी है, बढ़ते हुए कदम बढ़ाना और है। सब बदल गया। लेकिन हां, एक बात में वह नहीं बदला, वह है बचपन से उसकी

१. चैत-वैशाख में उठनेवाली आंधी।

काम करने की आदत।

अपने घर में उसने एक बाहरी बैठका जैसा बनाया था। भीतर वाले घर को तोड़-फोड़कर एक प्रकार से नया ही बनाया था। सब कुछ उसका अपना किया। दीवाल, छप्पर। यहां तक कि मेले में जो खरीदने गया तो, उसे किवाड़-खिड़की पसन्द नहीं आई। सो उसने नाप की लकड़ी और बढ़ई के औज़ार लेकर खुद ही सुन्दर-सी बनाकर लगा ली थी। एक पोखर था उसका। बटाई पर लगा हुआ था। उसे छुड़ाकर उसने खुद ही उसमें मछलियां छोड़ीं। खुद ही जाल बुना और खुद ही मछली मारा करता।

थोड़ा सोचकर गुसाईं ने कहा, कहते-कहते विचार भी तो कर रहा हूं नारायण का! मनुष्य की शक्ति की एक सीमा होती है। वही सीमा ही उसका अधिकार है। उसके बाहर जाना भी तो अपराध है! अपराध न हो चाहे, चूक तो जरूर है। उस चूक से तो मार खानी ही पड़ेगी। नहीं?

अहंकार से मनुष्य यह ज्ञान खो बैठता है। नारायण ने भी अहंकार से ज्ञान खोया था। यह न कहूं, तो सत्य कहना नहीं होगा। नारायण ने जब भूल-चूक की थी, तो उसे बताए बिना कैसे चल सकता है? ज्ञान को आदमी जानकर नहीं गंवाता है। अपने अनजानते ही गंवाता है, भूल से गंवाता है। या फिर नारायण ने ही ठीक किया था; विचारवान लोग या शास्त्र जो कहते हैं, अपनी ताकत को तोलकर तब कठिन काम के लिए कदम बढ़ाना, प्रतिद्वंद्वी को समझकर अड़ना—यह बात ही गलत है। आदमी डट जाएगा, उसके बाद ताकत कम होगी, तो हारेगा या मरेगा, यही स्वाभाविक है।

सो गलत हो या सही, मनुष्य के स्वभाव से उसने यह किया था। जब देख पाया तो पाया कि सब जगह, सब आदमियों में अन्याय है। राय बाबू से लेकर डोम-बागदी, सबमें ही अन्याय देखा। घाट बनरामपुर से लेकर सारे देश में यह अन्याय, यह अधर्म फैला हुआ है। कहां से इसकी शुरुआत···

गुसाईं ने ज़रा चुप होकर सोच लिया। कहा, हृदय से ही अन्याय शुरू हुआ। उसे ढकेलकर गिरा देने के समय से। नः, उससे भी पहले आम-जामुन के बगीचे में बाबुओं के उस लिकलिक कामुक छोकरे की बंदूक छीनने के समय से। लेकिन वे दो घटनाएं नये नारायण की नहीं। यहां तक कि यहां आने पर कुछ दिनों तक सुबह सुबह जाकर झील के किनारे टिन बजाकर बतखों को जगा देता, उड़ा देता था, वह भी नहीं। उस समय दो-चार दिन कुछ शिकारियों से उसकी कहा-सुनी भी हुई। उसने कहा, मैं टिन बजाकर गाना गाता हूं।

शिकारियों ने कहा, बस्ती छोड़कर टिन बजाकर यहां गाने के लिए आए!

उसने कहा, आप लोग अपना घर छोड़कर यहां बंदूक लेकर बतख मारने आए हैं, मैं भी यहां गाना गाने के लिए आया हूं। देखिए तो सही, बजते-बजते आवाज़ किस तरह चारों तरफ चली जाती है।

वह भी वास्तव में इसके अन्दर नहीं पड़ता।

जब पड़ा, तो फिर टिन नहीं बजाता। तब तो जैसे ही खबर मिलती कि शिकारी आया है, वह दौड़ा जाता और उनके पास जाकर गंभीर होकर कहता, आप लोगों से एक बात कहूं?

वे इसकी तरफ ताकने लगते। वह कहता, कहां से आना हुआ?

—बड़ी दूर से।

—बड़ी दूर से इन बेबस चिड़ियों को मारने के लिए आए हैं? इन्होंने आपका कुछ बिगाड़ा तो नहीं है!

शिकारियों की पहले ही बोलती बंद हो जाती। सच ही तो, ऐसी शिकायत तो वे नहीं कर सकते! उसके बाद पूछते, ये बतखें क्या तुम्हारी हैं?

—जी नहीं। मेरी क्यों होने लगीं?

—तो?

—तो उन्हें आप मारेंगे क्यों?

वह रुकने का नहीं। लेकिन एस० डी० ओ० ने खखारकर गला जो साफ किया, तो वह इशारा समझकर रुक गया। साहव ने अबकी पूछा, नाम क्या है ?

नारायण को डर लगा। अफसोस हुआ, वह कहने ही क्यों गया ? फिर भी अपने को सम्हालकर बोला, जी, नारायण गोस्वामी।

—गोस्वामी ? वैष्णव ? तिलक-कंठी कहां है ?

—जी नहीं।

—तो, गांधाइट ? गांधी का चेला ?

—जी नहीं। लेकिन उनकी भक्ति करता हूं।—उसने नमस्कार किया।

बोलते-बोलते डर भाग गया। यही होता है। कोई वात बोलते-बोलते टूट जाता है। कोई हिम्मत पाता है। नारायण टूटने लायक धातु का वना नहीं था। उसे हिम्मत मिली थी। इसीलिए वह नमस्कार भी कर सका था।

एस० डी० ओ० ने कहा, हूं ! करते क्या हो ?

—जी, एक पाठशाला चलाता हूं। और पूजा-पाठ कराता हूं।

—मांस-मछली खाते हो ?

—मछली खाता हूं, मांस नहीं।

—लेकिन मछली क्यों खाते हो ? उन्होंने क्या कसूर किया है ?

एस० डी० ओ० के बोलने के ढंग से सब लोग हा-हा करके हंस पड़े थे। दरोगा को खुलकर हंसना मना, सो वह मुंह फेरकर मुस्कराया।

उसने हाथ जोड़कर कहा, जी, वह देश में इस प्रकार चल पड़ा है कि याद नहीं रहता—याद नहीं होता। लेकिन अन्याय है, यह मानता हूं। आज से अब मछली नहीं खाऊंगा। आपके सामने कह रहा हूं।

वह नमस्कार करके उठकर चला आया था, लेकिन उसी दिन से उसका नाम पुलिस की डायरी में लिखा गया था।

यहीं नारायण के जीवन के भविष्य का बीज एक दिन उसके अनजानते ही विधाता ने टप् से झील की उस उपजाऊ माटी पर फेंक दिया था, वह

बीया शायद उसीके पैरों के दबाव से माटी में गड़ गया था।

उसी झील के किनारे ही भूतनाथ चटर्जी से परिचय हुआ था। उस दिन वह तड़के ही उठकर झील के उधर वाले गांव में गया था, मुहाफिज शेख के यहां। कातिक खत्म हो रहा था। रब्बी लगाने के लिए खेत जोत लिया था। कल जब बीज वाली हांडी को देखा, तो पाया कि मटर के जो अच्छे बीज रखे थे, तेलचट्टे ने लगभग नष्ट कर दिए थे। इस पार-उस पार कुतर गए थे। बड़ा अफसोस हुआ। ये बीये उसने पिछली बार विश्वबंधु को लिखकर कलकत्ते से मंगाए थे और उपजाकर रखे थे। इस बार ज्यादा ज़मीन में बोना था। लेकिन नष्ट हो गए। अब विश्वबंधु को लिखकर कलकत्ते से मंगाकर बोने में बड़ी देर हो जाएगी। याद पड़ गया, आधा सेर बीज उसने सीताहाटी के मुहाफिज शेख को दिया था। उसने मांगा था, नारायण ने दे दिया था। रात को सोते समय याद आया। सोचा, रात रहते ही उठकर शेख के पास जाऊंगा। आधा पाव, पाव-भर भी दे दे, तो क्यारी में लगा दूंगा। पत्तन रहेगा। उसके बाद विश्वबंधु को लिखूंगा, समय पर भेज दिया, तो देखा जाएगा। वह शेख से बीज लेकर ही लौट रहा था। सवेरे के सात बज रहे थे। सूरज उगा था। अधपके-अधकच्चे धान पर मीठी धूप पतली सुनहली चादर-सी पड़ी थी। धान के पौधों पर, पत्तों और बालियों पर ओस पड़ी थी, धूप में बूंद-बूंद टपक रही थी। आसमान में हज़ारों हज़ार चिड़ियां उड़ रही थीं—सफेद काले बिंदु जैसी। टिड्डीदल-सी लग रही थी। अबकी बतखें ज्यादा आई थीं। उनके आने का यही समय है। क्वार के अंत से आने लगते हैं। चलते-चलते ठिठक गया वह। एक कठिन आवाज़ की गूंज क्षीण, और क्षीण होती हुई दौड़ी चली आ रही थी—उसको पार करके चली गई; वह जा रही है—सीताहाटी के बाहरी जंगल के पेड़-पौधों में खो जाएगी।—वह…वह…फिर। ठांय। सनसनाती हुई-सी वह आवाज़ चारों ओर फैल रही थी, उसकी ओर भी आ रही थी। फिर।

उसे गुस्सा आया। आज फिर व्याध आया है। व्याध ही है। न, व्याध

से भी बुरा, घिनौना। व्याध की तो जीविका है—पेशा। इसीसे गुज़ारा चलता है। मांस वेचता है। और ये पेट भरने के लिए नहीं, भूख के दाय से नहीं, जीभ की तृप्ति और हिंसा के कौतुक से इनकी हत्या करते हैं। अब उसके मन में वल भी ज़्यादा था। उसने मछली खाना भी छोड़ दिया है। लिहाज़ा वोलने का हक उसका गोया वढ़ गया है। वह तेज़ी से कदम वढ़ाता हुआ जाकर झील के किनारे खड़ा हुआ। आकाश में चिड़ियां अव विंदू या टिड्डियों-सी नहीं लग रही थीं। लेकिन कहां? व्याध लोग कहां हैं?

'गुम्म्!' आवाज़ हुई। पानी के ऊपर से आवाज़ फैलने लगी। वह, वहां—उस पार, वड़ी-वड़ी घासों के जंगल में आदमी का सिर दिखाई दे रहा है।

आसमान से नीचे की ओर मुंह किए तीन चिड़ियां गिर रही थीं। झुंड का झुंड चिड़ियां क्याउं-क्याउं करके घूमती हुई मोड़ लेने लगीं।

फिर 'दुम्!'

ओः! फिर आठ-दस चिड़ियां नीचे गिर रही हैं। जैसे झड़ रही हों। वह दौड़ा। जाकर घास के जंगल के सामने खड़ा हो गया। उस समय वावू लोग निकलकर सिगरेट पी रहे थे। कुछ लोग पानी में उतर रहे थे, कुछ मैदान की ओर दौड़ रहे थे, गिरी हुई चिड़ियों को उठाकर लाने के लिए। लेकिन वह अवाक् रह गया, इनमें तो ज़्यादा लोग घाट वलरामपुर के हैं! राय वावुओं के कर्मचारी, उनका प्यादा, नाते में वड़े राय के भतीजे हरेन राय—भट्टाचार्य के यहां का दीनवंधु—विश्ववंधु के चाचा का लड़का। उस पार का अजय हाजरा—थियेटर करता है, कांग्रेस करता है—यहां तक कि शिवू डाक्टर भी, वामपंथी लीडर। वह भी है।

अजय हाजरा ने कहा, लो, आ गया। हम लोग वतिया रहे थे। तुम्हारे घर से होकर आया। सोचा था, इजाज़त ले लूंगा।

वह केंद्र के आदमी की ओर टक लगाए था। ज़रा काला, हां, काला ही कहना होगा। काला, दुहरा चेहरा, परिमार्जित—एक तीस-वत्तीस साल का जवान। पहनावे में महीन धोती, वदन पर खद्दर का कुरता। शहर के

फैशन के मुताबिक लंबे और रूखे बाल, हाथ में बंदूक, मुंह में सिगरेट—खड़ा-खड़ा उसे देख रहा था।

अंदाज से पहचानने में देर नहीं लगी। तो यही बड़े राय के जमाई हैं! भले घर का लड़का, शिक्षित, ग्रेजुएट—कलकत्ते में रहते हैं, व्यवसाय करते हैं। राय की बहुत संपत्ति है, बहुत दौलत है, पर संतान एक ही, वही बेटी। इनके साथ बेटी का व्याह करके इन्हें अपने ही घर रखने की सोची थी। लेकिन भूतनाथ रहे नहीं। राय के ग्राम्य स्वभाव और बहुत ही हिसाबी गिरस्ती में नहीं रह सके। कलकत्ते में थे। पहले बीच-बीच में दामाद की तरह आते थे। पता नहीं, बीच में क्या हुआ था, जिसकी वजह से कई बरस बिलकुल आए ही नहीं। दामाद जब कलकत्ते में रहते थे, तो राय की लड़की वहां रहती थी। गांव आते, तो लड़की ससुराल जाती। कई बार लड़की भी कलकत्ता गई है। अबकी ससुर से समझौता हुआ, जमाई अपनी ससुराल आए। यह बात उसने सुनी थी। राय बाबू ने उसे इन्हीं के पास रहने के लिए कहा था। वह उनकी ओर ताकता ही रह गया—परंतु गांव के जमाई, बहुत दिनों के बाद आए हैं, क्या कहना चाहिए, समझ नहीं पा रहा था।

उसकी निगाह देखकर शिबू डाक्टर ने पूछा, कौन है, जानते हो? वह जरा हंसकर बोला, पहचान गया। राय बाबू के जामाता। नमस्कार किया।

भूतनाथ ने कहा, मेरा नाम भूतनाथ चट्टोपाध्याय है।

—जी हां। आप राय बाबू के दामाद हैं—घाट बलरामपुर के हम सबों के आदर के पात्र हैं। जमाई बाबू।

शिबू डाक्टर ने कहा, इसके ऊपर अब कुछ कहा नहीं जा सकता।

हंसकर भूतनाथ ने कहा, सो तो है। इसके बाद बोले—तुम शायद यहां की बतखों के रखवाले हो। लेकिन क्यों? बतखों पर तुम्हें इतनी माया क्यों है?

मुस्कुराकर वह बोला, देखिए बेचारी चिड़ियां अपनी खुशी से रहती हैं,

कलकल करती हैं। माया होती है, देखने में अच्छा लगता है। कोई बुराई भी नहीं करतीं। यही, और क्या।

—सुना, तुमने मछली खाना भी छोड़ दिया। मछली-बकरे की बात तुमसे नहीं की जा सकती। मगर वे कितना धान खाती हैं सो तो कहो! तमाम रात तो टिन बजाकर लोग बतख भगाते हैं।

सो है। यह नारायण ने आज तक भी नहीं सोचा। लेकिन जवाब उसे साथ ही साथ मिल गया, उसने दिया, खाती तो हैं। मैं ना नहीं कहता। मगर कितना खाती हैं, कहिए? कितना? इतनी बड़ी बैहार, सिर्फ यही बैहार नहीं—इलाके-भर के खेतों में दो-चार मुट्ठी खाकर जीती हैं।

—वाह! खूब कहा! मैं और भी खुश होता, यदि यह कहते कि आदमी जिस प्रकार चतुराई से कानून के बल पर गरीबों को तबाह करता है, उपजाई हुई फसल छीन लेता है, उसकी तुलना में ये कितना खाती हैं? उनका क्या करते हैं?

नारायण अवाक् हो गया था। भूतनाथ बाबू क्या अपने ससुर की बात कह रहे हैं?

भूतनाथ ने फिर हंसकर कहा था, गुसाईं अवाक् हो गया है शिबू बाबू।

नारायण ने कहा, सो ज़रा हुआ हूं सर।

—मगर मैं तो जमाई हूं, लड़का तो नहीं हूं। इसके सिवा जब आदमी हूं, तो सच बात तो कहनी ही होगी।

—आप प्रातःस्मरणीय पुरुष हैं।

—तुम भी मामूली आदमी नहीं हो गुसाईं। मैंने सब सुना है। बड़ा अच्छा लगा। तुम बतख मारने को मना कर सकते हो। कम से कम मैं तो अब नहीं मारूंगा। मगर बात क्या है, जानते हो गुसाईं? जीवों पर दया का कोई मतलब नहीं होता, नतीजा भी अच्छा नहीं होता। वैष्णव-वैष्णवियों की जमात बढ़ती है। क्षात्र शक्ति के बिना भी चल सकता है? या कि वह होती तो हम लोगों की यह दुर्दशा होती? विदेशियों के पैरों तले रहना चाहिए?

ऐन वक्त पर राय बाबू का प्यादा और मजूरे कोटि के लोग आए। उन्होंने मरी बतखें उतारकर रख दीं। बीसेक बतखें। कई बतखें जिन्दा ही थीं। टुकुर-टुकुर ताक रही थीं।

उनकी तरफ देखकर नारायण ने कहा, मैं चलता हूं। नमस्कार।

—जा रहे हो? तकलीफ हो रही है? जाओ। यह देखकर तकलीफ मुझे भी होती है। जाओ। हां सुनो, रात को हमारे यहां—न, खाना नहीं होगा—आना। समझ गए? बातें करूंगा। अपने दोनों बच्चों को पढ़ाने के लिए किसीकी तलाश में था। तुम्हीं पढ़ाओ। आना। समझ गए?

नारायण को आदमी वह अच्छा लगा। अच्छा है। बड़े आदमी का जमाई होते हुए भी इस युग का है। और खुले दिल का है। रात को भूतनाथ बाबू शराब लेकर बैठे थे, नारायण को देखकर उन्होंने संकोच नहीं किया। कहा, नारायण, मैं भैया शराब पीता हूं। नियमित रूप से थोड़ी-सी पीता हूं। दोस्त-मित्र जुट गए, तो किसी दिन ज़्यादा भी पी लेता हूं। लेकिन छिपाना मेरे नियम के खिलाफ है। समझे! कांग्रेस को भी मानता हूं, सदस्य भी हूं, जेल जाने को तैयार, जेल क्यों, फांसी पड़ने से भी डर नहीं है, गांधीजी की भी भक्ति करता हूं। लेकिन शराब पीने से महाभारत अशुद्ध होता है, यह नहीं मानता। तुम्हें अगर घिन लगती हो, तो बैठने को नहीं कहूंगा। कल आना। और अगर यह न हो, तो बैठो। बातें करें।

उसने हंसकर कहा, न-न-न, घिन क्यों लगेगी? घिन क्यों करने लगा? कहकर वह बैठ गया।

उसी दिन भूतनाथ चटर्जी ने पांच रुपये माहवार पर उसे दोनों लड़कों को पढ़ाने के लिए मास्टर बहाल कर लिया। कहा, तनखा मैं दूंगा, मेरी स्त्री से मिल जाएगी। उन सूद के रुपयों, आदमी को चूसे हुए धान की कीमत से नहीं।

भजन हाजरा और दूसरे कई लोग चुप बने बैठे थे।

× × ×

जंगली बतखों के लिए जबर्दस्ती औरों से—एस० डी० ओ० तक से—झगड़ा न हो चाहे, वैसा कुछ कर सकता हो तथा बतखें मारने से मान करने के लिए मछली खाना तक छोड़ सकता हो, लोग ऐसे को पागल कहते हैं। यानी, बिगड़ा दिमाग। और अगर पागल ही हो, तो वह वही झगड़ालू पागल है, जो बददिमागी से अशुचि वस्तु खोज-खोजकर झगड़ा करता है।

वह असाधारण आदमी भी हो सकता है और फिर संबलहीन प्रतिष्ठा-कामी भी हो सकता है। न्यायवादी होने जैसा प्रतिष्ठाकर ऐसा सीधा रास्ता दूसरा नहीं। वह मन से भी और अकृत्रिम भी हो सकता है। और वह प्रतिष्ठा की भूख से भी पैदा हो सकता है। नारायण का क्या से क्या हुआ था, सो आप विचार कर लीजिएगा।

नारायण भी सोचकर ठीक नहीं कर सकता। समय-समय पर घपला लगता है। लेकिन शालिग्राम छकर बहुत बार वह अपने-आपसे ही बोला है, नहीं, प्रतिष्ठा की भूख से नहीं—नहीं-नहीं! फिर भी संदेह है। प्रतिष्ठा की कामना भी तो थी—जरूर थी।

आदमी को प्यार करता था, उसीसे उसे इच्छा हुई थी कि आदमी को भला बनाएगा। मनुष्य पर, निरीह मनुष्य पर जो भी जहां अन्याय करेगा, उसका प्रतिवाद वह करेगा, करेगा, करेगा! यह प्रतिष्ठा की कामना से भी हो सकता है—कुछ तो जरूर है। इसीसे उसने प्रतिज्ञा की थी। दोष है या गुण, इसके लिए वह खामखा सर खपाता है। शायद हो कि दुःख से। या कि गुस्से से।

उस समय यह विचार करने का समय उसे नहीं था। वेगवती बाढ़ की तरह वह आवेग की बाढ़ में बह रहा था। उस समय भरी जवानी थी। उम्र थी बीस की। १९४० का साल। समय अनुकूल था। ताका नहीं। नहीं तो भला वह विपिन से लड़ता? उस दिन सवेरे उठते ही विपिन को क्रोध से गरजते सुनकर वह दौड़ा गया—क्या हुआ? विपिन की मां आज-कल लगातार शिकायत करती है, मेरा कुछ नहीं हुआ। आजकल प्रायः

झगड़ा होता है। कहती है, मेरा जीवन व्यर्थ ही बीता। राँड़ी-कोढ़ी तक तीरथ कर आईं—काशी, गया, परियाग, बिंदावन, मथुरा। उन्हें सौ रुपये जुट गए, मेरे लिए नहीं जुटे।

गांव की कुछ स्त्रियां तीरथ के पंडे के साथ तीरथ कर आईं। उनमें से दो निपूती विधवाएं थीं। उन लोगों ने तमाम जिंदगी कमाकर जोड़ा था कुछ, उसीसे तीरथ करके सर घुटाकर लौटीं। लेकिन विपिन की अवस्था है, मगर उनकी मां का जाना नहीं हो सका। मां ने अपने पास के रुपये भी बेटे को दे दिए थे। उसमें विपिन का दोष नहीं। तीरथ जाने की बयार उठने के दो महीने पहले विपिन के ही चचेरे भाई हरीश ने एक जमीन बेची थी। विपिन के दादा की जमीन। विपिन की मां दस साल की उम्र में इस घर की बहू बनकर आई थी। उस समय संयुक्त परिवार था। उस समय विपिन की मां उस जमीन से ककड़ी-खीरे तोड़ लाया करती थी। उस जमीन में खीरे-ककड़ी खूब होते हैं। हरीश वही जमीन बेच रहा है, यह सुनकर मां ने ही विपिन से कहा था, जैसे भी हो, उसे खरीद ले। जमीन दोफसली भी है। नाप में डेढ़ बीघा से ज्यादा है। हरीश अपनों के हाथ बेचना नहीं चाहता था। खरीदार भी पांच तैयार हो गए थे। नतीजा हुआ कि डेढ़ बीघा जमीन की कीमत चार सौ रुपये हो गई। तिसपर उस समय रजिस्ट्री ऑफिस में जमींदार का सैकड़े बीस रुपया भी तुरन्त जमा करना था। रजिस्ट्री का खर्च अलग। पांच सौ से ज्यादा हो जाएगा। विपिन के पास तीन सौ से ज्यादा रुपया नहीं था। मां ने अपनी कुल पूंजी दो सौ रुपये निकालकर दे दी थी। जमीन खरीदी गई। लेकिन इसके ठीक दो महीने बाद ही झूलन के समय वृन्दावन का पंडा आकर यात्री जुटाने लगा। इस गांव की दो विधवा को [illegible] हुई। उन्होंने और कई को जुटाया। विपिन की मां ने उस वक्त बेटे से रुपया मांगा। लड़के ने कहा, अभी इस बरसात के समय में रुपया कहां से लाऊंगा।

धान बेचो।

—धान बेचूंगा तो खाऊंगा क्या? और फिर धान भी कितना है?

बेचने पर सौ रुपये भी तो नहीं होंगे।

मां को उस समय नारायण ने ही समझाया था। नारायण विपिन की मां का भिक्षा-पुत्र है, फिर पूजा-पाठ कराता है। सबसे बड़ी बात कि नारायण का इस समय मान है। सभी सम्मान के साथ उसे चाहते हैं। पहले जो स्नेह था, अब वह संभ्रम है।

मां से वायदा किया, अगले साल धान होते ही विपिन रुपया देगा। और वह खुद इंतज़ाम करके उसे तीरथ भेज देगा।

मां ने कहा था, उससे पहले ही अगर मर जाऊं बेटे!

नारायण ने कहा, सो नहीं मरोगी, मैं कहता हूं।

—तुम्हारे कहने से ही यदि होता बेटे, तो बात क्या थी। ऐसा तो नहीं होता। मेरा मन कह रहा है, मैं यह साल पार नहीं करूंगी।

नारायण ने कहा था, इस बार उसकी भौंहें सिकुड़ गई थीं—कहा था, यदि यही हो भिक्षा-मां, तुम अगर मर ही जाओगी, तो स्वर्ग जाकर पत्थर के बदले साक्षात् भगवान को देखोगी।

भिक्षा-मां अवाक् हो गई थी।

अपमान से बुढ़िया की आंखों में आंसू आ गए थे। गीली आंखों बोली, तुमने ऐसी बात कही बेटे?

—क्यों? बेजा क्या कहा? मैं कहता हूं, भगवान को तुम ज़रूर देख पाओगी।

बड़ी दृढ़ता से कहा था। बुढ़िया ने एक लम्बी सांस लेकर कहा, बच्चे को भुला रहे हो बेटे!

—नहीं। बच्चे को नहीं फुसला रहा हूं। सुनो, शास्त्र की बात सुनो। एक गांव में दो आदमी थे। एक धनी। बहुत रुपये, बहुत दौलत। बहुत रुपये, बहुत दौलत सहज ही नहीं होती, सीधे रास्ते से नहीं होती—यह देख रही हो। उसके लिए आदमी को ठगना पड़ता है। दूसरों का बकाया पचाना पड़ता है। अपना पावना सूद का सूद, उसका सूद बढ़ाकर तादाद की गलती करके देनदार को तबाह करके वसूलना पड़ता है। बहुत कुछ

करना पड़ता है। गरीब को दो रुपये उधार देकर दस रुपये का दावा करके—पचीस रुपये की गाय लेकर पैकार को बेचनी पड़ती है।

इन विधवाओं में से एक की बात चतुराई से उसमें घुसा दी नारायण ने। कथा में शिक्षा-सी उसे पतिया गई थी। उसके साथ दूसरे बनियों का भी इशारा किया था। राय बाबू से लेकर भट्टाचार्य परिवार तक।

उसके बाद कहा, दूसरा था धार्मिक गृहस्थ। गृहस्थी करता और अपना पावना-भर ही लेता। वाजिब पावना का पाई-पाई निबटाता। समय पर ईश्वर को पुकारा करता। भिखमंगे को भीख देता। मीठी बातें करता। गरीब-दुखियों के दुःख-कष्ट में आंसू बहाता। खाते वक्त कोई भूखा आ जाता, तो अपनी थाली से दो मुट्ठी उसे देता, एक मुट्ठी आप खाता।

धनी आदमी ने अपने यहां ठाकुर-प्रतिष्ठा की। पुजारी रख दिया, पर खुद बहुत कम जाता, अपने आप नहीं देखता। घर में गाय थी, चरवाहा था। अस्तबल में घोड़ा, साईस। ठाकुरबाड़ी में ठाकुर, पुजारी। और यह आदमी घर में घट बिठाकर, पट टांगकर, फूल देता, चंदन चढ़ाता, पानी देता। खाने के पहले ठाकुर को भोग लगाकर तब खाता।

वह बड़ा आदमी बुढ़ापे में तीरथ गया। उस बेचारे का जाना न हुआ। उसने घर के ही पट को प्रणाम करके कहा, तुम्हीं मेरे सब तीरथ हो।

बड़े आदमी के यहां एक दिन सांझ हो-हो कि एक अनाथ बालक पहुंचा, कहा, बाबा दिन-भर नहीं खाया है और मुझे आश्रय नहीं है। दो मुट्ठी अन्न और रात को रहने की जगह मिलेगी?

बड़े आदमी ने कहा, नहीं-नहीं, कहां का चोर-छिछोर है। रात को ठहरने की जगह नहीं मिलेगी। और उस कुबेर को, सांझ के वक्त खाना कहां? हटो, रास्ता लो।

बेचारा अनाथ बालक मुंह सुखाकर जाने लगा। रास्ते में उस गृहस्थ से भेंट हो गई। उसने कहा, मेरे बेटे, तुम्हारा चेहरा ऐसा उदास क्यों है? लड़का बोला, बाबा, मैं अनाथ हूं। मांग-जांचकर खाता हूं, लोगों के दरवाजे पर रात बिताता हूं। मगर आज भोजन भी नसीब नहीं हुआ, रहने की जगह

भी नहीं मिली। रात को कहाँ रहूँगा, क्या करूँगा, कोई ठिकाना नहीं।

गृहस्थ बोला, चलो बेटे, मेरे घर चलो। वहीं रहना, वहीं खाना। उसे ले जाकर बिछौना दिया, एक लोटा पानी दिया। कहा, बैठो। रसोई होने दो, खाना। रसोई बनी। उसे बुलाकर खिलाया। उसके बाद बिस्तर लगा दिया। लड़का लेटा।

तब उस धनी के यहाँ एक पहाड़ी आदमी आया। हाथ में लाठी, यह मूंछ, यह पगड़ी। कहा, मैं गया के पंडे का आदमी हूँ, आप कहाँ जा रहे थे, यह अंगूठी वहीं छूट गई थी। पंडा जी ने भेज दी है। लेकर आया हूँ।

वह धनी अंगूठी देखकर चौंक उठा। हीरे की अंगूठी! मगर उसकी नहीं थी। तो भी वह लोभ नहीं संभाल सका। कहा, हाँ-हाँ। बैठो। रहो। अरे, कौन है? पंडा जी के आदमी के लिए रहने का इन्तजाम कर दे, खाना दे, घी दे। लकड़ी दे। बिछाई ला दे।

आधी रात। गृहस्थ को लगा, घड़ियाल बज रहा है, शंख बज रहा है, झाँझ की झुनझुन हो रही है। और एक चमकती ज्योति आँखों में नाच रही है। उसने आँखें खोल दीं। देखा, वही अनाथ लड़का है। माथे पर चूड़ा, हाथ में मुरली। हँस रहा है। कह रहा है, चलो। मैं तो तुमको लिवा जाने को आया हूँ। चलो, रथ आया है। चलो। गृहस्थ रथ पर बैठे। रथ रवाना हुआ। रथ जब गाँव के उस तरफ गया, तो गृहस्थ ने देखा, उस धनी के यहाँ से एक जवान निकला, वह पहलवान, वह मूंछ, वह पगड़ी, हाथ में लाठी, वह उस धनी का झोंटा पकड़कर उसे लिए जा रहा था, अंधेरे की ओर।

गृहस्थ के साथ भगवान थे। वे हँसे। बोले, गया के प्रेतशिला से यम के प्रेतदूत को भेजा है।

गृहस्थ ने पूछा, क्यों भगवान, उसने तो बहुत तीर्थ किया है। अपने घर देवता की प्रतिष्ठा की है—और है…

भगवान बोले, मैं स्वर्ग में भी नहीं रहता, बैकुण्ठ में भी नहीं, तीर्थ में

भी नहीं। भक्त, मैं तो सदा तुम्हारे हृदय में ही रहता हूं। अब चलो, तुम मेरे कलेजे में, मेरे हृदय में वास करना।

बुढ़िया लमहे में सब भूल गई। उसने यह सब सत्य मान लिया नारायण ?

गुसाईं ने जैसे अपने-आपसे ही पूछा—नारायण ? जवाब भी अपने-आप ही दिया। नारायण उस समय तक ठीक नास्तिक नहीं हो उठा था। लेकिन यह कहानी उसने बुढ़िया को दिलासा देने के लिए गढ़कर कही थी। तो फिर ? हां। उसने झूठ बोलने का पाप या प्रतारणा नहीं की थी। बच्चे को चांद दिखाकर 'आ चांद, आ चांद' कहकर कपाल पर टीका देने से जो होता है, वही हुआ था।

खैर, छोड़िए। बुढ़िया उस दिन भुला भी गई, पर कुछ ही दिन के बाद फिर वही सुर उसने पकड़ा। इस बार झगड़े का नहीं, दुःखी होकर रोने का सुर ! जब-तब बैठी-बैठी कह उठती, अहा-हा-रे, ओः ! ऐसा नसीब ! मर्त्यलोक में मानुस-जनम लेकर···! आः, कुछ नहीं हुआ। कुछ नहीं हुआ। सिर्फ नरक, नरक ही घोंटती रही।

इसपर विपिन धीमे से प्रतिवाद करता। लेकिन जब बुढ़िया कहती, औरों के लड़के मजूरी खटकर मा-बाप को तीरथ कराते हैं। मेरी कोख ऐसी ! ऐसा जला पेट ! हाय रे ! कि विपिन बिगड़ उठता।

आज शायद ऐसा ही हुआ हो। और आज का गुस्सा मात्रा को पार कर गया हो। शायद हो कि इसके बाद कोई अप्रिय घटना घटे। नारायण बांस के एक टुकड़े को छील रहा था, गुलेल तैयार करने के लिए। हनुमान का उपद्रव काफी बढ़ गया था। उसने कटारी और बांस को छोड़ दिया, दौड़ा। जाकर देखा, सच ही एक अप्रिय घटना घट चुकी है। विपिन का पुराना चरवाहा, कन्हाई बाउरी, गाल पर हाथ रक्खे बैठा है। आंखों से आंसू बह रहे हैं। पूरे घर में सन्नाटा। विपिन का कपाल फट गया है, फूलकर एक फोड़े-सा हो गया है और उसमें फटकर लहू बह रहा है, दुबली लकीर-सा विपिन बिगड़कर चीख रहा है, निकलो, अभी, अभी तुरत निकलो यहां

से। निकल जाओ।

कन्हाई ने किसी प्रकार से कहा, जाना तो चाह ही रहा हूं। मैं भी अब यहां नहीं रहूंगा। भगवान भी कहें, तो भी नहीं। मगर मेरी तनख्वा चुका दो।

—नहीं दूंगा, नहीं दूंगा, नहीं दूंगा।

नारायण जाकर बीच में खड़ा हो गया। कन्हाई बोल उठा, देखो, देखो ठाकुर, ज़रा मंडल का बेवहार देखो। उसने मुझे ज़ोरों का एक तमाचा मारा—कहकर वह रो पड़ा।

विपिन बोल उठा, ठीक किया है, खूब किया है। तुम अगर फौरन चले नहीं जाते तो गरदन पकड़कर निकाल दूंगा। किसकी मजाल है कि रोके! ठाकुर! इसमें ठाकुर को क्यों घसीटता है? मैं किसीकी परवा करता हूं?

मां से विपिन के उसी झमेले से घटना की शुरुआत हुई। मां आज भी अपनी कोख को कोस रही थी। अफसोस कर रही थी। विपिन चिलम चढ़ा रहा था। वह गरज उठा—मां!

मां डरी नहीं। बोली, क्यों रे, मारेगा क्या?

—मारूंगा नहीं, मरूंगा। फांसी लगा लूंगा।

—नहीं तो सोलहों कला पूरी कैसे होंगी? मगर तू क्यों फांसी लगाएगा, मैं ही लगाऊंगी—और वह तुलसी चौंरे के पास गई, ठाप-ठाप करके माथा ठोककर कहने लगी, मेरी मौत नहीं है? तुम मुझे उठाओगे नहीं?

विपिन का धीरज जाता रहा। वह भी दिशाहीन-सा होकर तुलसी चौंरे के पास जाकर मां के सामने दूसरी तरफ माथा ठोकने लगा—मुझे मरण दो, आज ही रात को, उससे पहले मुझे उठा लो। मरण नहीं दिया तो कल तुम्हें उठाकर झील के पानी में फेंक दूंगा। मरण दो मुझे।

विपिन की मां को काठ मार गया था। उसकी बहू आई। विपिन को पकड़कर बोली, अजी ओ, यह क्या किया तुमने? हाय राम, लहू बह रहा है।

विपिन ने धक्का मारकर बहू को गिरा दिया। आंगन के उस ओर से कन्हाई ने लपककर विपिन को कसकर पकड़ लिया, मंडल !

कन्हाई विपिन से उम्र में बड़ा है। विपिन के बाप के समय का है। बाल पक गए हैं, पर देह में कूवत है। उसने ऐसा कसकर पकड़ लिया कि विपिन फिर सिर नहीं ठोक सका। ठोक न सके चाहे, मगर वह जवान ठहरा, झटके से उसने कन्हाई की जकड़ छुड़ा ली और उसके गाल पर एक तमाचा जमा दिया, हरामजादा !

'बाप !' बोलकर कन्हाई बैठ पड़ा था। कुछ देर तक सन्न-सा वह बैठा रहा। विपिन की मां ने जाकर उसके बदन पर हाथ रखकर पुकारा, कन्हाई ! कन्हाई ! अरे, कन्हाई !

विपिन इसीसे थम गया था। लेकिन मुंह की बकवास जारी थी। कह रहा था, इतना सिर चढ़ गया है तू ! नौकर होकर मेरे बदन पर हाथ ! जा। चला जा, मैंने तुझे जवाब दिया।

कन्हाई ने अपने को सम्हाल लिया था। पर बैठा ही था। उठा नहीं। उठने जैसी अवस्था नहीं थी। बेहद क्रोध और क्षोभ से वह अधीर हो पड़ा था। इतने दिनों तक उसने इस घर में काम किया। मालिक का इतना हित किया। मालिक भी उसे मानता रहा। आज उसी मालिक ने···

उसने बैठे ही बैठे कहा, ठीक है। मेरा बाकी चुका दो। मैं चला जाता हूं।

—काहे का बाकी ? किसका बाकी। नहीं देता। नहीं दूंगा।

—नहीं दोगे ? मैंने कमाया है, तनखा नहीं दोगे।

—नहीं-नहीं-नहीं। निकल जाओ। अभी निकल जाओ। फौरन !

—मेरी तनखा दे दो।

—नहीं। नहीं दूंगा। नहीं दूंगा। नहीं दूंगा।

इस वक्त घर नारायन जा पहुंचा था।

कन्हाई ने कहा, जाने के बाद जो बातें हुईं, नारायण ने सुनी थीं। विपिन और थोड़ा बिगड़कर फिर से चिलम चढ़ाने लगा था।

नारायण ज़रा देर चुप होकर खड़ा रहा। उसके भी माथे में एक गुस्सा जम रहा था। विपिन उसका कुछ नहीं धारता, पर कन्हाई का धारता है, यह वह भूल रहा है। भूल ही नहीं रहा है, नहीं देने की धमकी दे रहा है। आदमी ऐसा ही होता है। विपिन को कुछ है न, कन्हाई को नहीं है, इसी-लिए इतनी गर्मी।

उसने कहा, गंभीरता से ही कहा, विपिन भैया, उसकी तनखा तुम दे दो। बल्कि उसे कल आने को कहो। दो दिन के बाद आने को कहो। 'नहीं' मत कहो। यही तुम्हारा अन्याय हो रहा है।

अन्याय! विपिन चौंका; मेरा अन्याय हो रहा है? हूं!

—इसका मतलब?

—तुमसे मुझे यह सुनना पड़ा नारायण!

—क्यों? तुमने मेरा उपकार किया है, इसलिए क्या अन्याय को भी मुझे न्याय कहना पड़ेगा?

—तो फिर उसे अदालत ले जाओ। मेरे नाम उससे एक दफा नालिश ठुकवा दो, हो न्याय।

—नहीं, सो नहीं करूंगा। तुम खुद ही दोगे। सिर्फ इसकी तनखा ही नहीं, इस तमाचा मारने का भी दंड दोगे। कन्हाई का हाथ थामकर कहोगे—मुझसे गलती हुई।

—नारायण!

—चलो कन्हाई। मेरे साथ चलो।

सांझ को वह कन्हाई के टोले में गया। इस टोले-उस टोले से जो लोग चरवाही-धोरईगिरी करते हैं, सबको बुलाया।

सनातन पृथ्वी—माटी, पानी, आकाश, बातास—वही पुराना। मनुष्य भी उनमें पुरातन। किंतु उसके परिवर्तन का अंत नहीं। मनुष्य पैदा होता है—शैशव-बालापन, किशोर-युवावस्था-बुढ़ापा से होता हुआ अंत में मौत को पहुंचता है। यह भी सनातन है। किंतु तो भी मनु

नूतन है। पुरातन को वह जी-जान से पकड़े रहता है। नये के आने का रास्ता वह बंद किए देता है, तो भी काल किस रास्ते से जो नये को संचारित कर देता है, मनुष्य यह नहीं जान पाता। जब जान लेता है, तो नये की उमंग में पुराने की ममता और पुराना अजीब ढंग से कपूर की तरह उड़ चुका होता है। छोड़ जाता है महज एक गंध। उसे स्मृति कहते हैं।

ये बातें नारायण गुसाईं की नहीं हैं। वह इन सबकी बला नहीं रखता। ये बातें मुझ कथाकार की हैं। कथाकार तो व्याख्या करते हैं। इसके बाद जो हुआ, वह मैं जानता हूं, इस कहानी के सुननेवाले समझ सकते हैं। काल, सभी समय विराट और प्रधान होता है, पर इस युग में वह सिंगा लिए, बघछाला पहने त्रिशूलधारी हैं—मुक्ति-विधाता हैं।

गुसाईं ने कहा—वही कहा। उसने कहा, नारायण ने समझा था, इसमें उसे कठिनाई होगी। ये निरक्षर, पैरों से रौंदे हुए लोग उठने को कहने से उठना भी चाहेंगे, इसमें उसे संदेह था। वे तो ऊंची जाति के हैं, भद्र जनों के पैरों के दबाव से ही दबे नहीं हैं, तिसपर दिमाग में एक जटिल अपराध-बोध है। भद्र, ऊंची जात वालों को जवाब देना कसूर है, छू देना कसूर है, उनके भोजन की तरफ नजर डालने से भी कसूर! लेकिन गजब! नारायण उस दिन शाम को दंग रह गया, वे सब एक ही बात पर राजी हो गए। हितोपदेश की कहानी—बूढ़े की कई लकड़ियों का एक-साथ बंधा गट्ठर लोहे की कड़ी हो गया! लकड़ियों को एक जगह बांधने की बात कहना जितना आसान है, बांधना उतना आसान नहीं। लकड़ियों की शक्ल ही टेढ़ी-मेढ़ी होती है। उन सबको एक जगह बांधने से साथ नहीं निभती। यह तो मानो एक ही पल में लकड़ियां सीधी होकर आपस में सट गईं। तै पाया कि विपिन के यहां अब कोई भी काम नहीं करेगा। कन्हाई छोड़ रहा है, उसकी जगह पर कोई नहीं जाएगा। इसके सिवाय चरवाहा काम छोड़ देगा, जूठा-कूटा उठानेवाली बाउरी दाई काम छोड़ देगी—उसकी गायें कोई चरवाहा नहीं चराएगा।

एक ही दिन में, न केवल विपिन, बल्कि सारे गांव के लोग चौंक उठे,

यह क्या !

खुद नारायण भी चौंका, अरे ! यह क्या ?

लेकिन पीछे हटने का उपाय नहीं था किसीको । शिबू डाक्टर आया । वाहवाही दे गया । मामले को निबटा गए धनदा बाबू । उनकी बोली मीठी है । आदमी जैसे आदमी । उन्होंने अपने ढंग से निबटाया । नारायण तक को विपिन के सामने अपना कसूर कबूलना पड़ा । उन्होंने कहा, शूद्र हो चाहे, उमर में तुमसे बड़ा है । तुम्हारा भिक्षा-भाई है । उसके साथ ऐसा करना ठीक नहीं हुआ है । यह काम एक दिन रुककर उसे ज़रा ठंडा होने के बाद समझाकर करना चाहिए था । वह ऐसा करता । बेशक करता । तुम अपनी गलती मानो, मान लो ।

नारायण ने मानी । विपिन ने भी उसे गले से लगा लिया । लेकिन सिर्फ कन्हाई ने बात नहीं मानी । अपने पैसे ले लिए और कहा, मैं अब किसीके भी यहां काम नहीं करूंगा बाबू । मैं मजदूरी करूंगा । और इन रुपयों से अपनी बैलगाड़ी करके स्टेशन पर किराया कमाऊंगा । मुझको माफ कीजिए ।

और ढीला होने के बावजूद वह संगठन रह गया । उसके बंधन की डोरी नारायण के हाथ रह गई । मानो वह भी उसके साथ बंध गया ।

पूरा एक साल वह गांव में नहीं था । वह था सन् इकतालीस । वह गुरु-ट्रेनिंग पढ़ने गया था । एक साल पढ़कर खूब अच्छी तरह से पास किया । प्राइवेट से मैट्रिक करने की सोची । पाठ्य-पुस्तकें मोटा-मोटी पढ़ चुका था । संस्कृत और बंगला में तो वह कालेज की परीक्षा दे सकता था । सन् इकतालीस के अंत में लौटा । पूस का महीना था ।

विश्वबंधु उस समय एम० ए० पास करके राइटर्स बिल्डिंग में नौकरी में दाखिल हुआ । अच्छी नौकरी । उसने शादी भी कर ली । शादी उसकी गैरहाज़िरी में की, जब वह गुरु-ट्रेनिंग पढ़ रहा था । विश्वबंधु की स्त्री को देखकर वह खुश हुआ । विश्वबंधु ने नारायण की बड़ी तारीफ की । कहा,

ब्याह करो।

वह कुछ अनमना-सा हो गया था। झील की ओर ताक रहा था।

हां, ब्याह का ख्याल तो होता है। होता है। झील के किनारे सारस जैसी दो बड़ी चिड़ियां पास-पास खड़ी थीं। एक एक पैर को समेटे गरदन झुकाए लंबी चोंच को नीचे की ओर किए अधमुंदी आंखों खड़ी थी, लापर-वाह-सी—और दूसरी जरा चंचल—उसकी चोंच इसकी गरदन के ऊपर से जाकर पीठ पर फैली थी। बीच-बीच में पीठ पर हल्की-हल्की ठोकर मार रही थी।

जो निष्क्रिय खड़ी थी, वह थी मादा। अचानक वह पंख खोलकर उड़ गई। साथ ही उसका नर भी उड़ गया। केंक-केंक करके वह उसके पीछे हो लिया।

इन चिड़ियों का नाम है माणिक जोड़ा। साधारणतया कोई इन चिड़ियों को नहीं मारते। मारने की मनाही है। इसीको कहते हैं क्रौंच-मिथुन। लेकिन माणिक जोड़ा नाम बड़ा प्यारा है। उन्हीं दोनों चिड़ियों की ओर ताककर विश्वबंधु ने कहा, तू भी अब शादी कर।

वह अनमना हो गया। शादी! हां, शादी करने की ख्वाहिश तो होती है। लेकिन···

विश्वबंधु ने कहा, घर-द्वार बनाया। घर तेरा अच्छा बना है। गुरु-ट्रेनिंग पास कर ली। पाठशाला के लिए सरकार से ग्रांट पाएगा। पाठ-शाला में अब लड़के भी पढ़ेंगे। राय बाबू के यहां का ट्यूशन है। अब ब्याह कर ले। मैंने ब्याह किया। गृहिणी गृहमुच्यते।

नारायण ने कहा, बात तो सब ठीक है। किन्तु यह भी तो कहा—आम-दनी कितनी होगी, सो तो बता कुल मिलाकर तीस। और जमीन तो बस पांच बीघा। इससे क्या होगा? इधर लड़ाई छिड़ जाने से बाजार में तो आग लग गई है। चीजों की कीमत आग होती जा रही है दिन-दिन। तू तो भैया, मोटी तनख्वा पाता है। तनख्वा तेरी भी बढ़ेगी। तरक्की होगी। लेकिन मैं? मैं तो इतना करके भी पाठशाला का गुरुजी ही रह गया।

शादी करके क्या करूंगा ?

—ब्याह नहीं करेगा तू ?

—नहीं।

विश्वबंधु उसके मुंह की ओर अचरज से देखता रह गया था। मुंह देखकर मन खोजनेवाली नज़र। उसके बाद एकाएक बोल उठा, एक बात बताएगा ?

—क्या, कह। तुझे कौन-सी बात नहीं बताता हूं ?

—तू क्या पालिटिक्स कर रहा है ? यानी जमात में जुट गया है ?

विश्वबंधु का संदेह बेबुनियाद नहीं था बाबू, आप तो जानते हैं, आपको तो ज़्यादा कहना नहीं पड़ेगा। उन्नीस सौ तीस ईस्वी में हमारे थाने से आपके गांव के तीन आदमी जेल गए थे। और नज़रबंद नरेन बाबू गए थे—वे यहां रह रहे थे। उन्हें यहीं का मान लेता हूं। बाढ़ आती है बाबू, गांव के किनारे के बांध को तोड़कर गांव में बालू भरते हुए, माटी उखाड़कर अपना काम करके चली जाती है। लेकिन बांध की उस टूटन से बहुत बार ऐसा नाला बना जाती है कि उसे फिर बंद नहीं किया जा सकता, वह नाला ही बन जाता है। फिर साल-साल वह गहरा और चौड़ा होता चला जाता है। यहां वही हुआ था। ज़िले में षड्यंत्र केस हुआ। इस थाने के पांच-सात लड़के जेल गए, अंडमान गए। एक नाला हाथ की उंगली-सा होकर फैल गया। राजनीति भी उसी तरह सारे देश में फैल चुकी थी। धनदा बाबू की कह रहा हूं, शिबू डाक्टर की कह रहा हूं। बड़े-बड़े राजनीतिक कर्मी यहां आने-जाने लगे। हीरालाल दासगुप्त अंडमान से लौटे हुए आदमी। हरिपदो भार्गव—वह भी जेल की सज़ा काट चुका है। इस झील और नदी की वजह से यह इलाका दुर्गम है, इसलिए यहां सबने घाटी बनाने की कोशिश की।

काल—आप खुद ही उस समय कह रहे थे—बघशाला पहने हाथ में त्रिशूल लिए खड़ा है, नाचेगा।

लेकिन सिर्फ काल के नाचने से तो नहीं होता। काली को नाचना

होता है। काल नचाता है—मनुष्य के कलेजे में उसकी प्रकृति काली बनकर नाचती है। वैसे में कान हो, तो हवा में उड़कर आती हुई गीत की धुन सुनाई पड़ती है—ऐ मां दिगंबरी, नाचो री !

यूरोप में लड़ाई छिड़ गई थी। अंग्रेज हार रहे थे। लड़ाई यहां आने-आने को थी। सुभाषचंद्र बोस देश से चुपचाप निकल गए थे। कांग्रेस व्यक्तिगत सत्याग्रह छेड़े हुई थी, उससे वैसा कुछ हुआ नहीं। लेकिन कुछ न कुछ होगा। इसका आभास लोगों की आंखों में फूट रहा था, पेड़-पौधों की फुसफुसाहट में तैर रहा था। आशंका और उल्लास, दोनों मिलकर रात-दिन अजीब एक थम्‌थम्‌-सा भाव। कांग्रेस का अधिवेशन करीब था।

नारायण खुदीराम नहीं, प्रफुल्ल चाकी नहीं, वह शिक्षित नहीं—लेकिन वह पागल भी है, बेपरवाह भी। गांव के धनी, सम्पन्न समाज सबको दबाकर उसने अपने में असंभव की भूख भी जगाई है। उसने किसी राजनीतिक दल का साथ नहीं दिया—लेकिन प्रीति उसे सबके प्रति है। धनदा बाबू, शिबू डाक्टर, अजय हाजरा—इन सबको मानो वह अपना समझता है। हीरालाल दासगुप्त, हरिपदो भार्गव—इनके प्रति वह वैसे ही आकर्षण का अनुभव करता, जैसा कि शव-साधक तांत्रिकों के प्रति होता है।

इससे ज्यादा नाता नहीं। लेकिन यह भी कम नहीं। साथ अब तक वह देता, पर जाने कहां तो एक संकोच-सा है।

विश्वबंधु ने फिर उससे पूछा, नारायण !

—क्या ?

—चुप हो गया। तो···

नारायण ने कहा, नहीं रे। लेकिन भैया, अगर कुछ शुरू हुआ, तो कूद ही पड़ूंगा, जो होना होगा, होगा।

विश्वबंधु ने कहा, जरा समझ-बूझकर चलना नारायण। इस बार इस लड़ाई में अंग्रेज गोली खाए बाघ की तरह हो गए हैं। अबकी वे फाड़

डालेंगे। आंदोलन हुआ तो मारे गोलियों के धराशायी कर देंगे।

नारायण की छाती धड़क उठी—मारे गोलियों के धराशायी कर देंगे!—ज़रूर। राइटर्स बिल्डिग में मैं सुना करता हूं न। और फिर देखता हूं कि गांधी-वांधी का नाम लेने से साहब लोग दांत कड़मड़ाते हैं। बहुत गुस्सा। उससे अच्छा है, शादी-वादी कर घर-गिरस्ती में जी लगा...

उंहू! उंहू! उंहू!

उस रात वह ब्याह की बात ही सोचता रहा। सोचता रहा, खाहिश करके नहीं, आप ही घूम-फिरकर वह चिंता मन में आती रही। सोचते हुए बहुत-सी लड़कियों की शक्ल मन में उग आई थी।

उनमें जात-विचार नहीं था। बहुत-सी जगहों में समय-समय पर देखे हुए और जंचे हुए चेहरे। पहचाने हुए भी। एक चेहरा अस्पष्ट हो गया है, कई बार याद करने की कोशिश की, लेकिन साफ नहीं झलका। नीरू—मौसी के जेठ की लड़की। रंग की काली, मगर कितनी तेज़! और कितने सुन्दर बाल, साज़-पोशाक। बातचीत। एक बहुत ही खूबसूरत लड़की का चेहरा बार-बार याद आ रहा था। उसे उसने स्टेशन में गाड़ी से जाते हुए देखा है। कई बार देखा है। इस ओर या तो मैका है या ससुराल। मांग में सिंदूर था। फिर भी याद आता है।

ऐसे ही समय उस दिन उसे अचानक कन्हाई बाउरी ने पुकारा, ठाकुर! ठाकुर!

उसने समझा, टोले या गांव में कोई बात हुई है, इसीलिए बुला रहा है। साल-भर बाहर रहा, इसलिए कन्हाई की आवाज़ पहचानने में देरी हुई। और ऐसी घड़ी में पुकार सुनकर मन खीझ और रुलाई से भर गया।

गुसाईं ने कहा, और-और जिन लोगों ने शादी नहीं की वैसे रहे, वे सबके सब ब्रह्मचारी नहीं, लेकिन सुना है, दो-एक ने जिसे प्यार किया, उसे नहीं पाया, इसलिए शादी ही नहीं की। देशसेवी हैं, जिन्होंने देश को प्यार करके अपना ब्याह नहीं किया; ब्याह करके उन्हें उलझ

है, जेल में चिंता होती है, मरते समय कुछ देर के लिए मन में पीड़ा होती है। जो व्याह नहीं करते, वे मुक्त होते हैं, तकलीफ नहीं पाते। यह बात ठीक है। लेकिन वे क्या ऐसी सूनी रातों में या निर्जन क्षण में मन ही मन भी नारायण की तरह नहीं सोचते ?

नारायण उन जैसा देशसेवक नहीं था।

इसका प्रमाण उसे बाद में मिला था। यह बात पीछे बताऊंगा।

उधर फिर-फिर पुकार—ठाकुर, अजी ओ ठाकुर !

खीजकर ही उसने इस बार कहा, कौन ?

—जी, मैं हूं, कन्हाई।

—कन्हाई ? क्या बात है ?

—आपको एक बार उठना पड़ेगा।

कन्हाई ही उसका प्रधान चेला है। विपिन के यहां की नौकरी उसने छोड़ दी है। इस बात में नारायण की बात उसने नहीं रखी, लेकिन नारायण ठाकुर के प्रति उसकी अनुगतता का अंत नहीं। उस दिन नारायण जाकर खड़ा नहीं होता, तो उसकी प्रतिष्ठा नहीं होती, यह वह जानता है। जमींदार के पास जाने से अपनी तनख्वा शायद वह पाता—लेकिन विपिन को जुर्माना होता, लानत-मलामत होती, उसे भी जमींदार का नज़राना देना पड़ता, देना पड़ता गुमाश्ता का पावना, प्यादे की खुराकी। इसके सिवा, यह प्रतिकार जो उनके संगठन की शक्ति से हुआ है, उसकी गांठ तो नारायण ठाकुर की ही बांधी हुई है, इस बात से वह इन्कार कैसे कर सकता है ? इससे वे लोग खुश ही हुए हैं ज्यादा। पर ठाकुर ने उन सबसे फूटी पाई भी नहीं ली और ठाकुर का सबसे बड़ा गुण है कि वह उनकी औरतों की तरफ नजर नहीं उठाता।

नहीं, नारायण सो नहीं करता।

और···

कन्हाई ने कहा, और, जानते हैं, उस दिन रात को जब उसके मन की आंखों में बहुत-सी लड़कियों के चेहरे उभरा रहे थे, उनमें उन सबके टोले

की भी दो-एक लड़कियों के चेहरे थे।

नारायण उनकी तरफ ताकता नहीं था अपनी प्रतिष्ठा के लिए।

यह कोई छोटी बात है बाबू, कहिए ?

प्रतिष्ठा पुण्य है, इसमें संदेह नहीं। कम से कम नारायण को नहीं स्वर्ग जाने पर धरती की मानवी के लिए मनुष्य का मन उतावला होत है, वह माटी पर उतरना चाहता है। लेकिन पुण्य उसे उतरने नहीं देता बांध रखता है। प्रतिष्ठा भी ऐसी ही है। प्रतिष्ठा पुण्य है। जो लोग पुण्य फल को विषाक्त करते हैं, वे असुर हैं, वे दैत्य हैं। आप विचार देखिए जितने बड़े-बड़े असुर-दैत्य-राक्षसों का वध करने के लिए शक्ति या नार यण को दुनिया में आना पड़ा, वे सब शुरू में बड़े-बड़े योगी-तपस्वी थे तपस्या से जैसे ही सिद्धि मिली कि उसके बल से उन्होंने अनाचार-अत्या चार करके अमृत को विष बना दिया।

नारायण ने वह नहीं किया। नहीं किया इसीलिए भाग्यचक्र से कहिए नियति कहिए, नारायण के द्वारा ही असुर जैसे उस विकृत आदमी के नाश का संकल्प कराया। नारायण ने उसे मारने का संकल्प किया था लेकिन वह संकल्प कराया था उन्होंने।

उसने ऊपर की ओर हाथ उठाकर दिखाया था।

विकृत आदमी। उसके शक्ति थी, शिक्षा थी, तेज था, कर्म-शक्ति भी थी—फिर भी विकृत हो गया—प्रकृति के दोष से, कर्म-चक्र से।

खैर, रहने दीजिए।

नहीं, रहने क्यों दें। बात मैंने अवांतर नहीं कही। कन्हाई को शायद नियति ने ही उस दिन भेजा था। यहीं से इस नाटक का आरंभ हुआ।

नारायण झटपट निकला। बोला, क्या है कन्हाई ? सांझ को मैं आया हूं। आते ही विश्ववंधु की स्त्री को देखने गया। उसके बाद उसीके साथ झील के किनारे घूमने गया था। नहीं तो मिलने के लिए तुम्हारे टोले में जाता।

कन्हाई के साथ और भी तीन-चार जने थे। कन्हाई ने कहा, ह

लोग यही सोच रहे थे। ठाकुर जरूर ही आएंगे। नहीं आए। हम लोग भी कुछ व्यस्त थे। समझ गए। वह काम सफल हो गया। अब आपके पास आए हैं। विचार कीजिए।

—काहे का ?

—चोर पकड़ा है। चोर का।

—चोर ?

—मेरे खेत से धान काटकर साफ कर दिया था। कच्चा धान काट लिया था। क्या करता ? फिर से जोतकर कातिक में उड़द बो दिया था। फलना शुरू हुआ कि चोरी। छः-एक दिन पहले एक बार चोरी हुई थी। तब से पहरा दे रहा था। कई दिनों तक नहीं आया। आज ठीक पहुंचा। आया, घुसकर खेत से उखाड़ने लगा। हम चारों ही थे। बस झपट के पकड़ लिया। लेकिन···

—लेकिन क्या ?

—राय बाबू का प्यादा और उसका बेटा।

—राय बाबू का प्यादा और उसका बेटा ?

—हां। डोमन और उसका बेटा।

नारायण को सन्देह हुआ, तो क्या यह विपयी जमींदार राय बाबू का निर्देश है ? थोड़ा-सा खेत। थोड़े-से खेत के लिए राय बाबू ऐसा करेंगे ?

कन्हाई ने उसके शक को दूर कर दिया। बोला, झील के सामने उतनी-सी जमीन—मेरे बाप ने भरे हुए नाले को तोड़कर तैयार की थी। अब उसके आस-पास और भी जमीन निकली है। झील का पानी हट गया है। उन सबको डोमन ने जोता है। अब उसे मेरी उतनी-सी जमीन भी चाहिए। जानता है कि मैं देने का नहीं। गुमाश्ते ने उसे पट्टी पढ़ाई है, वह फसल लगाए और तू काट-काट ले। देख तो सही, बहुत जोर तो दो-तीन साल बीतते न बीतते वह खुद ही आकर निहोरा करेगा, डोमन भाई, तुम जमीन ले लो। और होशियार कितना है, सिर्फ मेरे ही खेत की फसल नहीं काटता, कुछ-कुछ अपने खेत की भी काटता है।

—कहां हैं वे सब ?

—कम्बख्तों को बांधकर रक्खा है।

—पीटा भी है ?

सर खुजाते हुए कन्हाई ने कहा, सो दो-चार धौल-धमाका। जमाया ज़रूर है।

—ज़्यादा तो नहीं ? कहीं चोट का निशान तो नहीं पड़ा है ?

—नहीं, निशान-विशान नहीं पड़ा है।

—तो फिर सवेरे उन्हें राय बाबू के पास ले जाओ। अभी जैसे हैं, रहने दो।

गुसाईं ने कहा, सवेरे तक का इंतज़ार नहीं करना पड़ा। उनके पास ले भी नहीं जाना पड़ा। राय बाबू के दो दरवान आ पहुंचे—उनके साथ गुमाश्ता। कड़ाई के सथ बोले, खोल दो इन्हें। और फिर कैफियत भी तलब की, इनको बांध क्यों रक्खा है ?

नारायण सोने जा रहा था। उनका गला सुनकर ठिठका। कन्हाई का घर ज़रा ही दूर पर है। रात के सन्नाटे में हर बात साफ सुनाई पड़ रही थी। वह लौट गया। कन्हाई के यहां गया। अंदर जाकर बोला, कन्हाई, इन्हें थाने ले जाओ। चौकीदार को बुलाओ।

गुमाश्ते ने कहा, ठाकुर, आग को मत छेड़ो। छेड़े जाने से आग लहक उठती है। जला अंगारा, राख छींट-बिखेरकर तुम्हारे डैने निकल आए हैं।

—दीये की लौ में कीड़े के पंख जलते हैं, बाज़ के डैने नहीं जलते। उसके डैनों के झपट्टे से दीया उलट जाता है रूपलाल।

लोगों की जुटान थी और सबके अंदर दबा क्रोध था। इसकी जांच रूपलाल गुमाश्ता ने महसूस की। उसने कहा, ठीक है, मैं राय बाबू से जाकर यही कहता हूं।

नारायण ने कहा, चकमा देने की मुझे और कोई जगह नहीं मिली रूपलाल ? खूब मालूम है, राय बाबू बीमार हैं।

लोग यही सोच रहे थे। ठाकुर जरूर ही आएंगे। नहीं आए। हम लोग भी कुछ व्यस्त थे। समझ गए। वह काम सफल हो गया। अब आपके पास आए हैं। विचार कीजिए।

—काहे का?

—चोर पकड़ा है। चोर का।

— चोर?

—मेरे खेत ने धान काटकर साफ कर दिया था। कच्चा धान काट लिया था। क्या करता? फिर से जोतकर कातिक में उड़द बो दिया था। फलना शुरू हुआ कि चोरी। छः-एक दिन पहले एक बार चोरी हुई थी। तब से पहरा दे रहा था। कई दिनों तक नहीं आया। आज ठीक पहुंचा। आया, झुककर खेत से उखाड़ने लगा। हम चारों ही थे। बस झपट के पकड़ लिया। लेकिन···

—लेकिन क्या?

—राय बाबू का प्यादा और उसका बेटा।

—राय बाबू का प्यादा और उसका बेटा?

—हां। डोमन और उसका बेटा।

नारायण को संदेह हुआ, तो क्या यह विपयी जमींदार राय बाबू का निर्देश है? थोड़ा-सा खेत। थोड़े-से खेत के लिए राय बाबू ऐसा करेंगे?

कन्हाई ने उसके शक को दूर कर दिया। बोला, झील के सामने इतनी-सी जमीन—मेरे बाप ने भरे हुए नाले को तोड़कर तैयार की थी। अब उसके आस-पास और भी जमीन निकली है। झील का पानी हट गया है। उन सबको डोमन ने जोना है। अब उसे मेरी इतनी-सी जमीन भी चाहिए। जानता है कि मैं देने का नहीं। गुमाश्ते ने उसे पट्टी पढ़ाई है, वह फसल लगाए और तू काट-काट ले। देख तो सही, बहुत जोर तो दो-तीन साल बीतते न बीतते वह खुद ही आकर निहोरा करेगा, डोमन भाई, तुम जमीन ले लो। और होशियार कितना है, सिर्फ मेरे ही खेत की फसल नहीं काटता, कुछ-कुछ अपने खेत की भी काटता है।

—कहां हैं वे सब ?

—कम्बख्तों को बांधकर रक्खा है।

—पीटा भी है ?

सर खुजाते हुए कन्हाई ने कहा, सो दो-चार धौल-धमाका। जमाया ज़रूर है।

—ज़्यादा तो नहीं ? कहीं चोट का निशान तो नहीं पड़ा है ?

—नहीं, निशान-विशान नहीं पड़ा है।

—तो फिर सवेरे उन्हें राय बाबू के पास ले जाओ। अभी जैसे हैं, रहने दो।

गुसाईं ने कहा, सवेरे तक का इंतज़ार नहीं करना पड़ा। उनके पास ले भी नहीं जाना पड़ा। राय बाबू के दो दरबान आ पहुंचे—उनके साथ गुमाश्ता। कड़ाई के सथ बोले, खोल दो इन्हें। और फिर कैफियत भी तलब की, इनको बांध क्यों रक्खा है ?

नारायण सोने जा रहा था। उनका गला सुनकर ठिठका। कन्हाई का घर ज़रा ही दूर पर है। रात के सन्नाटे में हर बात साफ सुनाई पड़ रही थी। वह लौट गया। कन्हाई के यहां गया। अंदर जाकर बोला, कन्हाई, इन्हें थाने ले जाओ। चौकीदार को बुलाओ।

गुमाश्ते ने कहा, ठाकुर, आग को मत छेड़ो। छेड़े जाने से आग लहक उठती है। जला अंगारा, राख छींट-बिखेरकर तुम्हारे डैने निकल आए हैं।

—दीये की लौ में कीड़े के पंख जलते हैं, बाज़ के डैने नहीं जलते। उसके डैनों के झपट्टे से दीया उलट जाता है रूपलाल।

लोगों की जुटान थी और सबके अंदर दबा क्रोध था। इसकी जांच रूपलाल गुमाश्ता ने महसूस की। उसने कहा, ठीक है, मैं राय बाबू से जाकर यही कहता हूं।

नारायण ने कहा, चकमा देने की मुझे और कोई जगह नहीं मिली रूपलाल ? खूब मालूम है, राय बाबू बीमार हैं।

—हुक्म देनेवाले और भी हैं। डोमन की स्त्री दीदी जी के पास गई थी। उन्होंने फूआ जी के मारफत मुझे यही हुक्म दिया है।

फूआ ने कहा, उन्हें ले आओ और कन्हाई को पकड़ लाओ। सिर्फ पकड़ ही नहीं लाओ, गले में गमछा डालकर ले आओ।

इधर के ज़मींदार-घर के यही बोल हैं। जमींदार घर की बेटियों का घमंड नारायण को मालूम है। अविश्वास नहीं हुआ। और फिर नारायण उनके लड़के को पढ़ाता है। उसे अच्छी तरह मालूम है।

हंसकर गुसाईं बोला, आप इसे नारायण से भी ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। दीदी जी सिर्फ बेटी ही नहीं, उत्तराधिकारिणी हैं। तिसपर फूआ जी संवाद ले आईं। मशाल की आग—पत्रे-काठी से लगकर ज़रा ज्यादा लहकी होगी—लेकिन आग यहां डरावनी है, आरती की रोशनी नहीं, उसपर हथेली रखकर कपाल पर उसका ताप नहीं लिया जा सकता। हाथ जलता है, हाथ में, मुंह में काले धुएं का दाग लगता है।

नारायण का पारा चढ़ गया। उसे डर नहीं लगता। अपनी शक्ति का उसे पता है। वह जानता है कि अन्याय उसका नहीं। यह भी जानता है कि ललकारने से वह जीतेगा। जानता है, पीछे हटने से उसकी मर्यादा ही नहीं जाती रहेगी, इन गरीबों का भरोसा जाता रहेगा। उनके कलेजे पर बांस तोड़ा जाएगा। उसने कहा, जाकर कह दो, जिन्होंने हुक्म दिया है, उनसे जाकर कह दो, इन्होंने चोरी की है—चोर थाना जाएगा, जमींदारों के यहां नहीं। अब लोग जमींदार के हुक्म और दरबान की लाठी के डर से नहीं चलते। लोग इसे भूल चुके हैं।

रात अच्छी नींद नहीं आई। मन की आंखों में फिर एक बार के लिए भी लड़कियों के चेहरे नहीं उतरे। सोचा, अच्छा ही हुआ। घटना आज रात हुई। एक साल वह बाहर रहा। बच्चों को कोई और पढ़ा रहा है। वही पढ़ाए। अब वह नहीं आएगा।

विश्वबंधु आय का हिसाब कर रहा था—इस वेतन का रुपया लेकर।

भोर में जोरों की रुलाई उठी। वह उठ बैठा। क्या हो गया। जिधर

से रुलाई की आवाज़ आ रही थी, उसी ओर को दौड़ पड़ा। राय बाबू के यहां रोना-धोना चल रहा था। राय बाबू चल बसे। बीमार चल रहे थे। बाहर जाने के लिए उठे थे, उठते ही गिर पड़े। लोग दौड़े। जाकर देखा, राय बाबू चल बसे।

नारायण को सबसे पहले डोमन की याद आई। राय बाबू गुज़र गए, अभी झगड़े का समय नहीं है। वह लौटकर कन्हाई के यहां गया। कहा, कन्हाई, इन लोगों को आज छोड़ दे। चल, बस वहां चल। परन्तु, इससे बहुत पहले ही दल बांधकर वे लोग डोमन को लेकर थाना जा चुके थे। दल बांधकर ले गए, कहीं रूपलाल रास्ते में लोगों के साथ आकर छीन न ले।

उमानाथ बाबू, दांतों की पकड़ से बड़ी-बड़ी मशीनें चलती हैं। घूमना शुरू होता है धीरे से, फिर तेज़ होता जाता है। जो चलाता है वह, एक के बाद दूसरा घाट बदल देता है; शक्ति का संचय समझकर नारायण के जीवन में भी वही हुआ। विपिन से कन्हाई बाउरी की लड़ाई का सूत्र पकड़कर उसका जो चलना शुरू हुआ था, उसी सूत्र के खिंचाव से वह रायों के आमने-सामने आ खड़ा हुआ। इसमें उसे डर नहीं था, पर कैसा तो कुछ लग रहा था। शायद हो कि यह सुने, राय यह सुनकर गरम हो उठे थे और उठने जा रहे थे कि गिर पड़े।

शवयात्रा में वह गया था। राय-परिवार की बात, लोगों की कमी नहीं थी, पर इन कामों में नारायण का मूल्य बहुत ज़्यादा था। जिससे जितनी भी दुश्मनी हो चाहे, श्मशान में नारायण सबका बंधु। इस बात में उस समय उस इलाके में उससे बड़ा बंधु दूसरा कोई नहीं था। उसे बुलाना भी नहीं पड़ता, आप ही आ जाता है। यहां भी वह आप ही आया था और अगुआ जैसा ही सारा काम किया था उसने। वहां किसीने कोई बात नहीं उठाई, रूपलाल ने भी नहीं, राय बाबू की बेटी ने भी नहीं। अगर यह सोचा हो कि यह नारायण से बेगारी लेना है, तो सोचे। नारायण के मन में भी

यह बात नहीं आई। शव कई कोस दूर, गंगा के किनारे ले जाया गया था। बेटी गांव के श्मशान में मुंह में आग देकर लौट गई। नारायण वगैरह शव को ले गए। दूसरे दिन सवेरे लौटा। राय बाबू के दरवाजे पर नीम का पत्ता मुंह में डालकर बैठा। यहां चाय और मिठाई का इंतज़ाम किया गया था। खा-पीकर लोग अपने-अपने घर जाएंगे। भूतनाथ बाबू बाहर निकले। बनियान पहने—स्वस्थ और सबल आदमी—पहनावे में धोती, नंगे पांव, आंख-मुंह में काले रंग के बावजूद स्वच्छ सफाई, हाथ में सिग-रेट। आकर खड़े-खड़े बोले, आइए। वहां आप लोगों को कष्ट-वष्ट तो नहीं हुआ? अपने रूपलाल जी के गुण की तो सीमा नहीं है। बड़ा हिसाबी है। अधेले का भी आधा काटता है।

महाचार्यों के यहां का गोविन्द पदो बोला, नहीं-नहीं। कोई कष्ट नहीं हुआ।

—संस्कार ठीक से हो गया?

—बिलकुल राख कर दिया गया। शव अच्छी तरह से जला। और उधर नारायण की कुशलता जैसी, वैसे ही जतन से किया।

—इलाके में गुसाई एक आदमी है। तो, मज़े में गुसाई? इसके पहले दो बार आया था, भेंट नहीं हुई। सुना, गुरु-ट्रेनिंग पढ़ने गए हो। खूब अच्छी तरह से पास किया है?

हंसकर नारायण बोला, जी, सो किया है। आप कब आए?

—कल शाम।

नायब ने आकर कहा, दीदी ने आपको अन्दर बुलाया है।

—अन्दर? चलिए।

बरामदे से अन्दर जाकर ठिठक गए। कहा, नहीं। मेरे जाने की जरूरत नहीं। मैंने जो कह दिया है, वही अन्तिम बात है। श्राद्ध चाहे वृषोत्सर्ग, दानसागर चाहे तिलकांचन कीजिए, मुझे कोई एतराज नहीं। भोज-भात जैसा चाहिए कीजिए। मेरा कहना है, धान के देनदारों के पास जो सूद है, वह सारा सूद माफ करना होगा। सिर्फ मूल लेना पड़ेगा।

कहिएगा, इससे मालिक का अक्षय स्वर्गवास होगा। ऐसा अगर हो तो मैं साथ हूं, वरना कुटुम्ब की तरह आया हूं, कुटुम्ब की तरह रहूंगा। उससे ज़्यादा मैं किसी बात में नहीं।

नारायण अवाक् रह गया। मन ही मन उसने उन्हें प्रणाम किया।

बाहर आकर भूतनाथ ने आवाज़ दी, अरे, इन लोगों का चाय-नाश्ता कहां है? चाय क्या आसमान से लाने गया है?

जलपान करके, चाय पीकर नारायण मुग्ध होकर घर लौटा। राय बाबू की जो धन-दौलत आदमी को, गरीबों को कानूनी पेच से चूसकर जमा हुई है, वह दौलत, वह धन अब एक उदार आदमी के हाथों में आकर मनुष्य का कल्याण करेगा। नारायण तक ही नहीं, सारे गांव में, आस-पास के गांवों में इस बात को फैल जाने में देर नहीं लगी। नारायण ने सोचा, कन्हाई आदि को थाने ले जाकर किसी तरह से मामले को दबा देगा और इस आदमी से उसका फैसला कराएगा।

कन्हाई को बुलाकर उसने वह बात कही भी। कन्हाई ने कहा, आप जो कहेंगे, वही होगा। हमारा बल तो आप ही हैं।

तीसरे पहर वह राय बाबू के यहां गया। श्राद्ध करेंगे बेटी। त्रिरात्रि श्राद्ध। अभी अवश्य मुख्तसर में ही हो रहा है। बाद में सपिंडीकरण श्राद्ध के समय वृषोत्सर्ग होगा। उसी समय वृहत् रूप से क्रिया-करम जो होगा, होगा। तो भी राय परिवार के इस कृती, धनी व्यक्ति के श्राद्ध का यह सामान्य आयोजन बहुत है। आस-पास के गांवों से बहुतेरे भले लोग पधारे। बीच में बैठे हैं भूतनाथ बाबू। नंगे पैर—बदन पर चादर। श्राद्ध की ही बात चल रही थी। नारायण ने जाकर नमस्कार किया। उसे देखते ही वह बोले, आओ गुसाईं। बैठो। छुतका है, नमस्कार नहीं करना चाहिए। कुछ ख्याल मत करना। बैठो। बात लकड़ी की हो रही थी। जलावन की लकड़ी। इमली का पेड़ काटा गया है। विराट एक पेड़ और घर के पिछवाड़े ही था—भट्टाचार्य के घर को छेंककर नहीं, बल्कि अंधेरा करके खड़ा था। बहुत कहने-सुनने, आग्रह-प्रतिवाद के बाद भी राय ने अब

तक उसे काटा नहीं था। उसमें इमली बेशुमार होती है। अबकी राय की बेटी के विरोध के बावजूद भूतनाथ बाबू ने उसीको कटवाया। भूतनाथ बाबू ने कहा, दुनिया में इमली की तो कमी नहीं है, कमी जो कुछ है, मन के मेल की है। इमली खरीदने से मिलेगी, पर यह तो दुकान में नहीं मिलता। खटाई के बदले मीठे का प्रबंध किया।

इसी वक्त श्रीपती गुमाश्ता आया और नमस्कार करके खड़ा हो गया। कहीं गया था, रेल से उतरकर आया है। बगल में गमछे की एक पोटली। भूतनाथ ने पूछा, लौट आए ? सब काम हो गया ?

—जी हां।

—सब सामान मिल गया ?

—जी। दाम ज़्यादा लिया, पर चीज़ अच्छी है। बेहतरीन।

अब माथे पर दो बड़े बोझ लेकर डोमन और परान आए। नारायण ज़रा चकित हुआ। समझ गया, ये लोग ज़मानत देकर लौट रहे हैं और जब श्रीपती गुमाश्ता के साथ लौट रहे हैं, तो उसके साथ कुछ सांठ-गांठ भी है।

—जा, अन्दर ले जा।—उसके बाद नारायण की ओर ताककर बोले, अरे, खड़े ही हो गुसाई ? बैठो। ओ, जगह नहीं है ! अरे ओ, बैठने को कुछ ले आ।

—नहीं-नहीं, मैं ओसारे पर ही बैठता हूं।

—नहीं। तुम नेता आदमी हो। सम्मान तुम्हारा पावना है। अरे ओ, कुछ ले आ। ऐ हरामज़ादा, सुन नहीं रहा है ?

किससे कहा, नारायण ने नहीं समझा। मगर यह समझा कि भूतनाथ बाबू गरम हो उठे हैं। और इस आदमी की जात अलग है।

ज़रा देर इंतज़ार करके वह हठात् बोल उठा, नमस्कार। मैं आज चलूं।

—अरे नहीं। बैठो। बैठने को कह रहा हूं।

—मुझे काम है।

—तुमसे मुझे काम है। बैठो।

—कौन-सा काम ? कहिए।

—कहता हूं। बैठो।

नारायण बैठा। भूतनाथ भले लोगों की तरफ ताककर बोले, इन सबके सामने ही कहूं ? अच्छा, कहता हूं। पहले ब्राह्मण-भोजन में परसने का भार तुमपर रहा। छोटे-छोकरों को लेकर···

नारायण के कपाल पर अब तक एक एक करके शिकन की लकीरें पड़ रही थीं—अब सबकी सब एक साथ गायब हो गईं। उसने हंसकर कहा, बेशक ! जो कहेंगे, वही करूंगा। देख लीजिएगा, ज़रा भी इधर-उधर नहीं होगा।

—जानता हूं, तुम एक बहुत बड़े लीडर हो। बाउरी-डोम-बागदी—सब तुम्हारी बात पर उठते-बैठते हैं। खैर, कल उन लोगों को बुलवाकर सफाई-वफाई का काम करवा देना। मूढ़ी, चावल और चार पैसे दिए जाएंगे।

—बेगार ?

—हां, बेगार। सुना, बेगारी करने की मनाही की गई है।

—उन लोगों ने ऐसा ही तै किया है।

—उन लोगों ने नहीं, तुमने।

नारायण के कपाल की जो लकीरें गायब हो गई थीं, वे सब एक-एक करके नहीं, लमहे में एक ही साथ जग आईं। छाती भी ज़रा ज़ोर से तड़पने लगी, दिमाग में कुछ गर्म-सा घूम रहा है, ऐसा अनुभव हुआ, कान गर्म हो गए। उसे लगा, इतने लोगों की निगाह उसे सुई-सी चुभ रही है। उसने जी-जान से अपने को ज़ब्त रखा और उनकी ओर ताककर बैठे ही बैठे कहा, तो क्या यह मैंने अन्याय किया है ? बाबू कहना तब तक उसने छोड़ दिया, पर क्या कहे, यह ठीक नहीं कर सका। ज़रा रुककर उसने कहा, कम से कम आपसे यह सुनने की उम्मीद मैंने नहीं की थी।

—क्यों ? इसलिए कि तुम्हारे कहने से मैंने बतख नहीं मारने की

कही थी ?

—हां।

बतख और आदमी एक नहीं है गुसाईं। बतखें जंगली हैं। उनसे घर-गिरस्ती नहीं की जाती। गोली न बजाकर टिन बजाने से भी वे भागती हैं। आदमी के साथ घर-संसार करना होता है। सुन लो, बड़े लोग गरीबों को चूसकर खाते हैं, मैं जैसे इसे नहीं पसन्द करता वैसे ही यह भी नहीं पसन्द करता कि गरीब भले, संभ्रांत, लोगों का अपमान करके सर पर चढ़कर चलना चाहे। जिन्हें अकल है, वे ऐसा हरगिज नहीं करते।

—वे किसीका अपमान नहीं करते और सर पर चढ़कर भी चलना नही चाहते।

चाहते हैं। कन्हाई बाउरी ने वही किया है। वह राय परिवार के सर पर चढ़कर गया है और लीडर बनकर तुमने जाने को कहा है।

—राय के यहां का नौकर चोर हो तो उसे थाना भेजना और राय-परिवार के सर पर चढ़कर चलना एक ही बात है ?

—पांच जनों से पूछ देखो। क्या कहते हैं वे। धोरई-चरवाहों के लिए कुछ कहने में मुश्किल हो गई है लोगों को।

—यदि ऐसा हुआ हो, तो इससे दस आदमियों को सुविधा हुई है। दस क्यों, बीस को।

—बीस को न सही, तुम्हें हुई है।

—मुझे ? नहीं।

—अच्छी तरह से सोच देखो। उन लोगों का तुम जो उपकार कर रहे हो, उससे ज्यादा उपकार और लोग उनका करते हैं।

—उपकार ?—नारायण हंसा।

—नहीं ? जिसके नहीं है, उसे पांच जने देते नहीं हैं ? तुम जब यहां आए थे, तब की सोच देखो।

—मैंने कुछ नहीं किया ?

—तुम करोगे तो मुझे करना होगा—आदमी क्यों, जानवर भी इससे

पोस मानता है। सुनो, पाला हुआ जानवर बदमिज़ाज हो जाए, तो आदमी उसे बेच देता है। आखिरकार मार डालता है। सुनो, उन लोगों को बदमिज़ाज मत कर दो।

—सोच देखूंगा।—यह कहकर वह उठकर चला आया था। और नहीं ठहरा।

घर लौटकर उसने इन बातों पर जितना ही सोचा, उसका अन्तर उतना ही विद्रोही हो उठा। उसके बाद उठकर वह बावरी टोला गया। वहीं बैठकर दूसरे टोले के लोगों को भी बुलवाया। कहा, तुम लोग सोच देखो। बेगार खटने जाओगे।

कन्हाई ने कहा, नहीं। लेकिन दूसरे लोग सिर झुकाए चुप बैठे रहे। चुप रह जाना दुनिया में सम्मति का लक्षण है, पर उसके साथ सिर झुके होने का मतलब उलटा होता है। नारायण समझ गया, वे लोग उसकी तरफ ताक नहीं पा रहे हैं, लाज लग रही है।

उसने फिर पूछा, क्यों रे ? बोल।

एक ने कहा, अजी बाबू, इन्होंने तो आते ही बकाया धान छोड़ दिया। और फिर राय बाबू के सराध की बात है। राय बाबू तो अब नहीं लौटते।

नारायण कुछ देर चुप रहा, फिर बोला, खैर, जाना।

कन्हाई बोला, मैं लेकिन नहीं जाऊंगा ठाकुर।

इसके बाद शायद चुक ही जाता। उसने ऐसी ही आशा की थी। कन्हाई सचमुच ही बेगार खटने नहीं गया। दूसरे लोग गए थे। नारायण ने श्राद्ध में यथासाध्य किया। नारायण का यथासाध्य कम नहीं, बहुत है। भोज में परोसने का भार उसीने लिया था। छोरे-छोकरों को लेकर बड़े सुचारु ढंग से ब्राह्मण-भोजन, सत्-शूद्र-भोजन कराके जब गरीबों का दल खाने के लिए बैठा, तो रात के दस बज गए। छोकरे तब तक थकथका गए। कई तो खिसक पड़े। बाकी बैठ पड़े—अब नहीं चलता। नारायण तब भी काम कर रहा था। सद् जाति के कुछ लड़कों को लेकर परोसने का काम वह चलाता रहा। परोसते-परोसते ही धड़ाम से गिर पड़ा।

दाल गिरने से एक जगह पर फिसलन हो गई थी। भात की बालटी लेकर तेजी से जाते हुए वह फिसल गया। और गिरा तो ऐसा गिरा कि नारायण जैसा आदमी, कुछ देर तक उठ नहीं सका! कमर में चोट लगी। उस चोट को सम्हालने के लिए तीन दिन पड़े रहना पड़ा था। पहले दिन भूत-नाथ बाबू स्वयं उसे देखने आए थे। घर से होम्योपैथिक बक्सा लाकर उसे आर्निका खिलाया था। बाकी के दिन भूतनाथ बाबू की ओर अजय हाजरा खोज-पूछ कर गया। उसने कहा, भूतनाथ बाबू ने भेजा है। खाता-पत्तर देखने में व्यस्त हैं। खुद नहीं आ सके। तबीयत भी अच्छी नहीं है।

उसीसे सुना, ढप का कीर्तन हुआ था। उसीको लेकर कुछ बखेड़ा हुआ था। समझा नहीं, ससुर की संपत्ति से सुख नहीं है।

नारायण ने हंसकर कहा, सो भैया, राय-कन्या के नाराज होने की बात है। कीर्तन ही लाया, तो मर्दों का दल लाया होता!

—ढप-कीर्तन के लिए हम सबने कहा था। बूढ़ों तक ने। आखिर उन्होंने भी राय दी। भूतनाथ बाबू रसिक हैं। गाना-बजाना समझते हैं। झगड़ा-कीर्तन के बाद भूतनाथ बाबू उन लोगों के डेरे पर जाकर बैठकी गाना सुन रहे थे अकेले नहीं, हम लोग भी थे।

नारायण अजय हाजरा वगैरह को जानता था। वह हंसा।

अजय हंसने का मतलब समझ गया। वह बोला, झगड़ा दरअसल उसके लिए भी नहीं; असल झगड़ा, भूतनाथ बाबू ने कल स्त्री से कहा, राय बाबू के नाम एक होम्योपैथी दवाखाना खोला जाए। स्त्री ने कहा, वह सब नहीं, शिवमंदिर जो है, उसे बंधवा दो और मंदिर की मरम्मत कराकर संगमर्मर के टेबलेट बैठा दो। भूतनाथ बाबू ने कहा, अजी गंवई-गांव की ये पुरानी बातें रहने दो। कहना था कि हो गया! हां, शहर जैसा आधुनिक हो तो तुम्हें सहूलियत हो। ढप आए—मौज-मजा हो। और क्या, रुपया मेरे बाप का!

नारायण की कमर में सेंक देने के लिए विपिन की बुढ़िया मां—उनकी शिक्षा-मां आई थीं। अजय ने कहा, तो चलता हूं।

नारायण ने पूछा, मेरे बारे में कुछ कह रहे थे ? अजय बोला, मुझे तो भेजा। नारायण ने गरदन हिलाकर कहा, नहीं, वही कन्हाई-वन्हाई के विषय में ? अजय ने हंसकर कहा, कहेंगे क्या, भेंटभाट कर लेने से ही मिट जाएगा। अजय हाजरा चला गया। नारायण सोच रहा था, झंझट चुका लेगा। यह सोचते-सोचते ही चुका लेने का रास्ता बंद हो गया। डोमन के मामले की तारीख आ गई। वह भी गवाह था। अदालत में खड़े होकर झूठ वह भी नहीं बोल सका, कन्हाई भी नहीं। डोमन को एक महीने की सज़ा हो गई।

रूपलाल गुमाश्ते ने तुरत अपील की और ज़मानत पर डोमन वगैरह को छुड़ाकर उन सबके साथ ही लौटा। और बड़ी बड़बड़ की। कन्हाई और उनके साथ वह चुपचाप ही आया। गांव में पहुंचा तो राय के घर से कतराकर घर गया।

नारायण नहीं डरा—गुसाईं ने कहा, कन्हाई वगैरह डर गया। डरने की ही बात थी। नारायण को शर्म-सी आई—भूतनाथ बाबू के सामने आंखों की शर्म। आदमी बड़ा वो है। सूद का धान छोड़ देता है, होम्योपैथी चिकित्सालय खुलवाना चाहता है; नारायण कमर के दर्द से घर में पड़ा था, सो देखने आया था। दवा दे गया। अजय को देखने के लिए भेजा। झंझट चुकाना चाहते हुए भी न चुक सकी।

फिर भी नारायण सोच रहा था। झंझट कैसे मिटे, यह वह सोच रहा था। डर से नहीं, भूतनाथ बाबू के विभिन्न चरित्र में एक आकर्षण है। जिस आकर्षण से सिर्फ अजय हाजरा ही नहीं आता, धनदा बाबू आते हैं, शिबू डाक्टर आता है। दो-एक दिन हीरालाल बाबू के भी आने का उसे पता चला है।

सन् बयालीस का आरंभ। जनवरी खत्म हो रही थी। डोमन को सज़ा हो गई। बाउरियों का संगठन टूट गया था, वे फिर संगठित होने लगे। अखबारों में कांग्रेस के कार्यक्रमों पर विचार चल रहे थे। पूरब में

युद्ध के काले बादल साइक्लोन की शक्ल लेकर सन्-सन् कर रहे थे। भूतनाथ बाबू के पास हिरनहाटी से अखबार आता था। हिरनहाटी में अखबारों की एजेंसी हो गई थी। वहां कलकत्ते का अखबार दिन के दो बजे आ जाता, भूतनाथ बाबू का आदमी जाकर ले आता। उसीपर आलोचना हुआ करती। नारायण नहीं जा पाता। वह रोज दोपहर को हिरनहाटी चला जाता, वहीं से अखबार पढ़ आता।

जीवन में एक बेचैनी-सी आई थी। घनदा बाबू ने उसे बुलाया था, वह नहीं गया। शिबू डाक्टर से भेंट हुई थी। उसने कहा था, बड़ा अच्छा काम कर रहे हो गुसाईं। मेरे यहां मत जाना! बहुत-सी बातें हैं। समझते हो न, इस बार एक महामारण होगा। फिर भी वहां नहीं गया।

एक नशा। एक नशा सवार हो गया था उसपर।

खेत जोतते-जोतते प्यास लगती। शायद हो कि जमीन में पानी की कमी से खेत को किसी तरह से जोत नहीं देने से खराब हो जाएगा। उस समय भूख की याद नहीं रहती, परन्तु प्यास नहीं मानती। हल रोककर सामने की ओर दौड़ता—वह, किसान की स्त्री वहां लोटे में पीने का पानी लिए आ रही है।

नारायण के जीवन में उस समय वही प्यास लगी थी। हिरनहाटी वह सिर्फ अखबार पढ़ने नहीं जाया करता, ट्रेन देखने जाता था। ट्रेन में औरतों का मुखड़ा देखा करता। जहां तक याद आता, काला, सुन्दर, मझोली किस्म का, देखने में जैसा भी हो, वह हसरत-भरी निगाहों से उन्हें देखता।

पाप कामना नहीं? नहीं। नः, न ही क्यों, कुछ-कुछ वह भी। पूरी नहीं, इतना कह सकता हूं। ब्याह की सोचता। ब्याह के लिए उस समय उसे बहुतेरे लोग कहते थे—नारायण, उसके एक बेटी है रे, बह रहा था, तू अगर ब्याह कर ले। समय बदल गया था। ब्याह में अब रुपये देने की बात नहीं रही। और उस समय उसकी कमाई थोड़ी थी, पर उसी मामूली

आय में उस इलाके के सभी व्याह करते थे। लेकिन अजीव वात। व्याह के लिए मन हामी नहीं भरता। मन के सामने उसकी देखी हुई मार्जित रुचि की आधुनिका स्त्रियों की सूरतें आ जातीं—वे उसे मना करतीं। सिर्फ यही नहीं, गांव की कुछ स्वैरिणी लड़कियां उस समय मुग्ध होकर ताकती हुई उसे आकर्षित करने की भी कोशिश करतीं। इसी कन्हाई की लड़की ससुराल से भाग आई थी—उस लड़की में लालसा जगाने जैसा कुछ था। क्या था, यह तो नहीं कह सकता, नारायण ने उसकी तरफ ठीक से ताका ही नहीं। नाम था सूरो—सुरधुनी या सुरबाला, यह जानने की कोशिश नहीं की। कन्हाई के नाते के वहाने वह प्रायः आती। हंसती। मज़ाक करने की कोशिश करती। और कई स्त्रियां सांझ को चाहकर झील के किनारे जातीं—नारायण जहां पर झील की तरफ ताकते हुए बैठा रहता, माणिक जोड़ को देखता रहता, उन वतखों को देखा करता, वे उसीके आस-पास घूमा करतीं। थोड़ा-सा चने का साग या ऐसा ही कुछ वहां से तोड़ लातीं। साग तोड़ते हुए गला मिलाकर एकसाथ गाया करतीं। उनके मर्द भी होते, खेतों में काम करते होते, उनके सामने वे ही ताकतीं, कनखी मारतीं, मज़ाक करतीं, उससे भी, आपस में भी। लेकिन मर्द लोग इसके आदि हो चुके थे—जाने कब से सहते-सहते इसमें वे प्रतिवाद या शासन करने का कुछ नहीं पाते। तिसपर नारायण पर उन लोगों को विश्वास था। याकि उन्हें भी शायद लोभ हो—ठाकुर को ज़रा और ज़्यादा अपना करने का।

नारायण की उम्र उस समय वाईस-तेईस की थी। गोरा रंग, लम्बा और दोहरा शरीर, चौड़ी छाती, सर पर लंबे वाल; स्त्रियों को देखकर पुरुषों की तृष्णा जागती है—इसी हिसाव से नारायण का ख्याल था, स्त्रियों को भी उसे देखकर तृष्णा जागती है। लेकिन उन्हें देखकर नारायण की तृष्णा नहीं जग पाती, ट्रेन में देखा हुआ एक सुन्दर-सा मुखड़ा उसके मन में जगा रहता। और फिर प्रतिष्ठा के पुण्य का वंधन। ताकने से ही वह वंधन सख्त हो जाता, कष्ट देता।

छोड़िए भी, लगता है, ज़्यादा बक रहा हूं।—समय देखकर गुसाईं

ने कहा, वेला डूब चली। सूरज भगवान की मशीन—वह तो नपी-नपाई है—जरा बढ़ा दो कहने से बढ़ा नहीं सकते।

छः फरवरी की बात कह रहा था—

छः फरवरी को गाड़ी देखने के लिए वह स्टेशन पर खड़ा था। उसे एक गजब की खूबसूरत स्त्री दिखाई पड़ी। उसकी नजरों में गजब की लगी। जैसा रूप वैसी ही रुचि। ड्योढ़े दरजे में जा रही थी। नारायण लोलुप की नाईं देख रहा था। उसे चेत हुआ जब गार्ड की सीटी बजी। उसके बाद जो किया, यह वह खुद भी नहीं जानता था कि वह ऐसा कर सकता है। टिकट चेकर से जाकर कहा, मैं इस गाड़ी से चल रहा हूं। टिकट नहीं कटा पाया हूं। गाड़ी पर बना दीजिएगा। जंक्शन जाऊंगा। ड्योढ़े दरजे में ही चढ़ गया। जंक्शन तक उसे देखते-देखते गया। वह स्त्री अपने पति और शायद अपनी ननद से बात कर रही थी। इसकी तरफ उसने ताका भी नहीं। न ताके, नारायण को उससे कोई नुकसान नहीं, वह देखते हुए गया।

जंक्शन में, एकाएक मानो नाटक-सा हो गया। कलकत्ते की गाड़ी से विश्वबंधु उतरा।

विश्वबंधु ने कहा, तू! उसने भी कहा, तू!

इसी बीच वह स्त्री और उसके साथ के लोग उस गाड़ी पर चले गए। विश्वबंधु ने कहा, शहर में काम है। सचिवालय से स्पेशल मैसेंजर के रूप में ज़िला मजिस्ट्रेट को देने के लिए कागज़ ले जा रहा हूं। कहा, खैर, अच्छा ही हुआ। तुमसे भेंट हो गई। खूब सावधान भैया। बर्मा चला गया। हमारे प्रभु लोग पीछे हट रहे हैं—कुढ़कर पागल हो उठे हैं। इधर देश में···चुप हो गया वह। उसे ख्याल था, वह प्लेटफार्म पर खड़ा होकर बातें कर रहा है। उस बात को वहीं छोड़ते हुए बोला, लेकिन तू यहां कहां?

वह विश्वबंधु से भी झूठ कह रहा था। शायद वह बात किसीसे भी नहीं कही जाती। उसने कहा, भई, कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था, बड़ा

अजीब-सा लग रहा था, इसलिए गाड़ी पर सवार हो गया। जंक्शन तक चलूं, मेन लाइन की गाड़ी देखकर शाम को लौट आऊंगा।

विश्वबंधु ने कहा, चल, मेरे साथ चल। आज शाम तक काम-काज करके रात को डाक बंगले में ठहरेंगे। कल सवेरे मैं कलकत्ता चला जाऊंगा, तू घर लौट जाना।

उसने वही किया। विश्वबंधु के साथ शहर चला गया। शाम के बाद उससे खूब बातचीत हुई। विश्वबंधु ने उससे बार-बार कहा, देख, तू बहुत अच्छा काम करता है। बुरा सोचकर कुछ नहीं करता, यह मैं जानता हूं, विश्वास करता हूं। फिर भी, यह रास्ता किसका है, मालूम है ? जो तमाम जिन्दगी जल सकता है उसका।

उसने कहा, हूं। सो तो समझता हूं। लेकिन...

विश्वबंधु ने पूछा, लेकिन क्या ?

—रहा जो नहीं जाता। यह मेरा स्वभाव बन गया है। अच्छा तू ही बता, कोई वैसे आंखें दिखाए और उसे बर्दाश्त करना पड़ेगा ? ज़रा देर चुप रहकर फिर बोला, खैर, तू सुलझा दे।

—सुलझा दूंगा। इस बार जब घर आऊंगा, तो सुलझा दूंगा। ज़रूर। उस आदमी में दोष भी हैं, गुण भी हैं। उससे बहुत काम करा लिया जा सकता है, करा पाओ तो। और फिर...

—क्या ?

—बड़े बुरे दिन आ रहे हैं रे ! वह जो करता है, करे। बड़े आदमी का दामाद है, अपनी निबेड़ेगा। लेकिन तू...मैं खूब समझता हूं नारायण, तुझे तो जानता हूं। सनक में जो-सो करके अपने को तबाह कर लेगा। नारायण, बड़ा भयानक समय आ रहा है।

दूसरे दिन वह घर लौटा। लौटते ही देखा, भयानक समय उसीके घर के आंगन में हाज़िर है और उसका इंतज़ार कर रहा है। पुलिस के दरोगा और दो सिपाही खड़े हैं। उनके पास खड़ा है रूपलाल। आस-पास गांव के कुछ लोगों की भीड़, बाउरी लोग, विपिन। ओसारे पर विपिन की मां

बैठी है।

स्टेशन से आते हुए जैसे ही वह गांव में कदम रखने लगा था, कि यह खबर उसे मिली थी। सूरो—कन्हाई की बेटी—हिरनहाटी की ओर भागती जा रही थी। कन्हाई के घर की भी तलाशी ली जा चुकी थी। वह कन्हाई के मालिक चावल के व्यापारी दत्त बाबू को यह खबर देने जा रही थी। कन्हाई आजकल बैलगड़ी से उसकी दूकान का चावल-धान ढोता है। नारायण को देखते ही वह ठिठककर खड़ी हो गई थी, ठाकुर, भाग जाओ। घर मत जाओ। नारायण ने हैरान होकर पूछा, क्यों? सूरो ने कहा, तुम्हारे यहां दरोगा-सिपाही आए हैं। रूपलाल गुमाश्ता बुला लाया है।

रूपलाल गुमाश्ता दरोगा-सिपाही बुला लाया है! उसके यहां! लमहे में खोपड़ी में आग लहक उठी। वह तेजी से गांव की ही तरफ लपका। सूरो ने कहा, ठाकुर, मेरे बाप को पकड़ लिया है। तुम मत जाओ।

नारायण ने माना नहीं। डरने की कोई बात तो नहीं थी। तिसपर उसका गुस्सा। वह निर्दोष है, वह सज्जन है! उसका सुनाम है। उसके जायदाद नहीं, रुपये नहीं, लेकिन नाम है! रुपये के बल पर ये पाषंड जुल्म ढाया करेंगे और वह उन्हें सहता रहेगा!

घर पहुंचकर उसने छाती फुलाकर कहा, क्या है? मेरे यहां यह क्या माजरा है?

—चोर। यही चोर है। मैं रात जगकर निकला, यह तालाब की तरफ से चला गया। मैंने पूछा, कौन? कोई जवाब नहीं दिया। चला गया। यही है। इसीने चोरी की है।—रूपलाल गुमाश्ता बोल उठा।

नारायण ने जो किया, वह उसने खुद भी नहीं सोचा था। आपके जीवन में कभी आग जली है? जली होती, तो समझते। नारायण ने रूपलाल के गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। खूब जोरों का तमाचा। रूपलाल 'बाप रे!' कहकर बैठ पड़ा। मुंह लहू-लुहान हो गया। दो दांत टूट गिरे। नारायण चिल्ला उठा, झूठा कहीं का!

दरोगा ने कहा पकड़ लो इसे !—एक सिपाही उसपर टूट पड़ा नारायण को होशो-हवास नहीं रहा था। उसने उसे भी एक घूंसा जमाया इतने में दूसरे सिपाही ने भी आकर उसे पकड़ा। कुछ देर में वह आपे में आया। अब उसे मालूम हुआ कि रायों की ठाकुरवाड़ी से ठाकुर के गहने की चोरी हुई है। ठाकुर के गहने—शालिग्राम के सोने का जनेऊ, सोने का छाता, चांदी का सिंहासन।

रूपलाल गुमाश्ता ने कहा, मैं रात को उठा था। पोखरे की तरफ गया था। पोखरा ठाकुरवाड़ी के पिछुआड़े है। उस समय मैंने पोखरे पर से एक आदमी को जाते देखा। आवाज़ दी, कौन ? कौन है ? उस आदमी ने कोई जवाब नहीं दिया। मेरा पक्का ख्याल है, वह नारायण गुसाईं था। रात अंधेरी थी, तो भी उसके आकार और चाल से मैंने पहचाना।

और शलिग्राम का जनेऊ, छाता, सिंहासन—यह ब्राह्मण के सिवाय कौन लेगा ? शूद्र भला छू सकता है ? हरगिज़ नहीं। छूना संभव नहीं है। यह हो सकता है, किसी ग़ैर धर्म वाले ने चुराया हो—मगर वह शालिग्राम को रखकर नहीं जाता। वैसे में उठाकर फेंक देता या पटककर तोड़ देता।

यह चोर ब्राह्मण है, और वह ब्राह्मण के घर का नास्तिक काला पहाड़ नारायण गुसाईं है।

भूतनाथ बाबू ने शायद यह कहा, मैं इसके बारे में कुछ नहीं कह सकता। ठीक समझ नहीं पा रहा हूं। लेकिन अब रूपलाल कह रहा है, तो उसीपर अविश्वास कैसे करूं ? पुलिस जैसा समझे, करे।

पुलिस रूपलाल के साथ आई। आकर देखा, नारायण के घर का दरवाज़ा बंद है। इंतज़ार करने लगी। पुलिस ने कन्हाई बाउरी के घर की तलाशी ली। इसलिए कि कन्हाई उसकी बातों में रहता है।

नारायण के सर के बाल इखरे-बिखरे थे। सिपाही ने झोंटा पकड़कर उसे खींच लिया। तो भी वह दमक रहा था। छाती जल-सी रही थी।

ज़रा रुककर गुसाईं ने कहा, आग नारायण के कलेजे में कब लगी,

नारायण को नहीं मालूम। शायद हो कि हृदय के यहां से ही लगी हो! शायद हो कि गांव के लोगों को हृदय से चाहने में; उनके मन, उनके अंगों को उत्ताप की हल्की-सी छुअन देने में—घर की रसोई में उस चाहने को पकाने के लिए उसने आवेग की आग सुलगाई हो—लोगों ने उसको उसका-उसकाकर बिखेर दिया और वह चूल्हे की आग से घर जलानेवाली आग होकर उसकी छाती के घर में लग गई! शायद उसी दिन लगी। शायद हो कि उसने खुद भी बिखेरी हो। उन बाउरियों का संगठन करने में उसने असावधानी से जलती चिनगारी फेंकी थी, वह सुलगी, लहक उठी।

जलन से जलते हुए-से ही नारायण ने कहा, कल दोपहर के बाद से मैं गांव में नहीं था। पांच बजे की गाड़ी से जंक्शन गया था। वहां से शहर गया। आज अभी दस बजे दिन में हिरनहाटी में उतरा। हमारे गांव का सरकारी कर्मचारी विश्वबंधु इस बात का गवाह है। कल रात मैं उसी-के साथ था। मैं चोर हूं!

गुसाईं ने कहा, नारायण चोर नहीं। चोर होने की तोहमत टिकी नहीं। लेकिन नारायण अधीर था, क्रोधी था। लोगों के उपकार के आनंद के जिस स्वाद ने उसे धुनी बनाया था, नशा बनकर उसने उसे प्रमत्त बना दिया। और हंसकर गुसाईं ने कहा, मनुष्य को चोर होने का संदेह करने में अपराध नहीं होता— साधु को कहने में भी नहीं होता। किंतु साधु को उसके प्रतिवाद में सज़ा देने का अधिकार नहीं है। देने से अपराध होता है।

रूपलाल का दांत हिलता ही था, फिर भी दांत तोड़ देने से हड्डी तोड़ने का कसूर होता है। तिसपर उसने सिपाही को पीटा था। सरकारी काम में रुकावट डाली गई थी। इन दो कसूरों के लिए उसे डेढ़ साल की सज़ा हो गई।

ऊंची दीवारों से घिरे कैदखाने में वह कलेजे की आग जगाए बैठा रहा।

सन् बयालीस के मार्च से तैंतालीस के अक्तूबर तक। एक प्रकार से

यह अच्छा ही हुआ, नहीं तो अगस्त आंदोलन में गोली खाकर मरता। या फिर सितंबर की बाढ़ में बह जाता, नहीं तो अक्तूबर के समुद्री तूफान में बाउरियों को बचाने में पेड़ से दबकर मरता। उस बार नदी में भयानक बाढ़ आई थी। विपिन का घर गिर गया था, नारायण के घर की दीवाल बैठ गई थी, बाउरी टोला तीन दिन तक पानी में डूबा रह गया था। नतीजा यह हुआ कि वह माटी का टीला-सा बन गया। दो-तीन बच्चे, एक औरत पानी में बह गई थी। वे छप्पर के ऊपर बैठे थे। मज़े की बात क्या थी, पता है? पहले टोले में बाढ़ घुस आती थी, तो वह सब लोटा-कटोरा, माटी के बर्तन, अंथरी-कथरी, गाय-बछड़ा लेकर भले लोगों के टोले में कहीं इधर-उधर, गुहाल में, चलिये में पनाह लेते थे। उस बार ऐसा न हो सका। कारण जानते हैं? कारण नारायण का छींटा हुआ ज़हर या अमृत जो कहिए! उन लोगों का संगठन फिर मज़बूत हो उठा था। मजबूत हो रहा था। अगस्त आंदोलन की हवा से या आंच से।

गुसाईं बोला, काल की चर्चा पहले कर चुका हूं। एक-एक समय काल ऐसा रूप लेता है कि उसमें महाकाल का स्वरूप साफ दिखाई पड़ता है। सारी दुनिया को एक महाकाल ही एक कर सकता है। खंडकाल नहीं कर सकता। वह सिर्फ घास-पत्ता इकट्ठा करता चला जाता है और महाकाल उसमें आग जलाकर धरती-आकाश को आग और प्रकाश से, आंच और धुएं से एक कर देता है। उसमें सिर्फ घास ही नहीं जलती—जंगल जलता है, पेड़ जलते हैं, कीड़े-मकोड़े, जीव-जन्तु सभी जलते हैं।

उन्नीस सौ बयालीस का अगस्त आंदोलन वही था। संसार-व्यापी लड़ाई बढ़ते-बढ़ते बर्मा होते हुए चटगांव फेनी तक आ पहुंची—ऊपर कोहिमा, मणिपुर। यह इलाका कोमल घास और सब्ज़ पत्तों का वन होकर ठण्डी बयार में डोल सकता है। पर उसमें भी आग लगी। अगस्त आंदोलन बनकर लगी। उस आग में वे बाउरी लोग दूब-से होते हुए भी लहके। जले न हों चाहे, पर आग की आंच से सूखकर सिकुड़-सिमट गए। बाढ़ में वे नहीं गए। लेकिन समुद्री तूफ़ान में गए। बाढ़ के बाद टीला-से हो गए

टीले पर उन्होंने बांस के चलिये खड़े किए, उन्हें ताड़ के पत्तों से छाया और रहे। तूफान में वे पत्ते पहले ही उड़ गए। नारायण रहा होता, तो उनके पास जरूर दौड़ा जाता। क्या करता, पता नहीं, पर जाता। क्योंकि नहीं जाता तो दूसरे भले लोग आकर ले जाते। आखिर सभी आदमी हैं। आदमी आते हैं। लेकिन विपद-ग्रस्त लोगों की अनुगतता पाने का लोभ भी है। सब जानते हैं। नारायण सबसे पहले जाता। शायद हो कि पेड़ से दबकर मर जाता। कैदखाने में वह जिन्दा रह गया। लेकिन उसने बाउरियों की बात सोची थी। बाउरियों की ही क्यों, बस्ती के बारे में भी सोचा था। सोच नहीं सका सिर्फ रायों की बात, और रूपलाल की बात। नहीं, यह उसने नहीं सोचा। आक्रोश! आक्रोश! आक्रोश जमा था, जम रहा था। बीच-बीच में उद्वेग होना—आखिरकार वे लोग उस भूतनाथ के पास जाकर लोट पड़ेंगे। लोट पड़ने भी। लेकिन उससे पहले ही, तूफान के दूसरे दिन, महाअष्टमी के सवेरे जाकर वह उन्हें बुला लाया था, खिलाया था, उनके रहने की जगह कर दी थी। लोगों ने हरि-ध्वनि की थी, साथ ही राय की जयजयकार भी की थी। रात को उनके टोले की कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियों ने चपरासी-गुमाश्ते से फुस-फुस भी किया था। उन लोगों ने चूं-चपड़ नहीं की। राय बाबू के यहां हवेली में मालिक-मालकिन में कहा-सुनी हुई। मालकिन ने कहा, यह क्या हो रहा है? यह तो छूत-छात जाती रही, सब एकाकार हो गया। जहां-तहां लड़के घूम रहे हैं। लड़कियां ही-ही हंस रही हैं।

मालिक ने कहा, तो क्या हुआ? कितनी बड़ी आफत आ गई, और फिर आदमी ही तो है!

—नहीं। जो नियम है, मैं वह नहीं तोड़ने दूंगी। हरगिज नहीं। और कोई पूजा नहीं, यह दुर्गापूजा है! बात धीरे-धीरे और बढ़ी। रात भूतनाथ ने दी। लेकिन रात बीतते-बीतते एक बाउरी को पीटा। उसने मंदिर के दालान में ही पेशाब किया था।

जेल में नारायण मामूली कैदी था। इस बार राजनैतिक कैदियों को

खास-खास जेल में रक्खा गया था। नारायण को उनके साथ का लाभ न मिला। उसके यहां के धनदा बाबू की गिरफ्तारी की खबर उसे मिली थी—हिरनहाटी के विधू डाक्टर को भी पुलिस ने पकड़ा था—परंतु उनसे उनकी भेंट नहीं हुई। हीरालाल दासगुप्त फरार हो गए थे। कालीपदो भार्गव और शिबू डाक्टर सिर्फ बाहर रह गए थे। उनकी जमात इसमें नहीं उतरी।

और-और दिन की तरह नारायण उस दिन, यानी महाअष्टमी की रात को साइक्लोन की गरज के समय उन लोगों के साथ ही था। और दिन वे सब अपनी-अपनी कहानी कहते—चोर चोरी की कहता, डकैत डकैती की। लोटा-कटोरा चुरानेवाला चोर खूब हंसते हुए घाट से लोटा गायब कर देने की कहता। अपने-अपने घर की सुनाता। नारायण बोलता नहीं, सुना करता, सोचता। उस रोज़ कैदियों ने भी दुनिया के लिए सोचा था—उसने भी सोचा था। उन सबके जीवन में एक सहज स्वच्छंद आनंद ही रहता था—दूसरे दिन नारायण को रहता था आक्रोश। उस दिन एक हो गया था।

और जिस दिन कलकत्ते पर बम गिरने की खबर मिली, उस दिन सभी बहुत खुश हुए। वह भी खुश हुआ। महाकाल का रूप, महाकाल की हवा जेलखाने की दीवारें तड़पकर भी आती है।

विपिन को वह पत्र दिया करता था। विपिन जवाब दिया करता। महीने में एक। उसीसे खबर मिला करती। विपिन उसके सभी पत्रों का उत्तर नहीं देता। सन् तैंतालीस के शुरू में उनने खबर दी, देश में महामारी फैली है। पिछले साल फसल बिलकुल नहीं हुई। महीने-दो महीने की खूराक—सो भी नहीं। लोगों के कौन-सी बीमारी हो रही है, समझ में नहीं आती। गिरते हैं और मरते हैं। बहुतेरे बैठे ही बैठे मर जाते हैं। अन्न सिर्फ राय के यहां है। दे भी रहे हैं वे, पर लोग लेना नहीं चाहते। उसके बाद जाने क्या लिखा था—बड़े जतन से काट दिया था, क्योंकि पंक्ति पूरी नहीं थी, कई शब्दों की अधूरी पंक्ति।

उसके बाद एक चिट्ठी आई फरवरी में—तुम्हारी दीदी लक्ष्मी चल बसी।

नारायण को बड़ा दुःख हुआ। मार्मिक। उसे बार-बार वीरेन की याद आई। दीदी का वही एक लड़का जिंदा है। उसके बाद तीन-चार बच्चे सौरी में ही मर गए। हृदय ब्याह करेगा, यह जानता है वह। वीरेन? उसका क्या होगा? उसके ठीक दूसरे ही दिन उसे हृदय की चिट्ठी मिली थी। जाने क्या सोचकर हृदय ने उसे पत्र दिया था। लिखा था, 'भाई नारायण, तुम्हारी दीदी मुझे मझधार में छोड़कर स्वर्ग चली गई। मैं अथाह में पड़ गया हूं। वीरेन की शक्ल देखकर कलेजा फट जाता है।'—उसने बड़ी जहरीली हंसी हंसी।

एक लंबा निःश्वास छोड़कर गुसाईं ने कहा, ममता बड़ी पवित्र वस्तु है बाबू। ममता के सुख से, दुःख से भी मन-प्राण मनुष्य को बदल देता है। जैसा भी आदमी हो, साधु ही हो या पापी हो, बदलकर एक तरह का कर देता है। कैसा, कहें? जादू से कागज का फूल जैसे असली फूल हो जाता है, वैसा ही। इसी ममता से नारायण भी जेल में बाकी कुछ दिन मानो असली फूल हो गया था। फूलकर सूखकर झर जाता—बीच-बीच में चिंता जागी रहती, अचानक फिर दीदी की याद आ जाती, वीरेन की याद आ जाती, कि तुरत फिर दूसरी कली निकल आती, धीरे-धीरे खिलती। बचपन की याद हो आती, सोचता, वीरेन की अभी क्या हालत है, कलेजे की आग पानी हो जाती। हृदय ने फिर ब्याह किया या करेगा, इसकी कल्पना करते ही अपना बाल नोचने को जी चाहता।

जेलखाने से निकलकर वह घर नहीं गया, गया दीदी के यहां। बड़े दिनों के बाद गांव में दाखिल होते हुए वह ठिठक गया था। स्टेशन से पैदल ही गया था। गांव पर नजर पड़ते ही सिहर उठा था। पहले नदी के कटाव पर ही नजर पड़ी। वह कटाव भल्ला टोले तक आ पहुंचा था। बेला झुक चली थी, अपराह्न का समय था। नदी किनारे के उन पेड़-पौधों की

क्या हालत थी ! लेकिन जो हो, पेड़ वे बहादुर हैं। अर्जुन का वह बड़ा पेड़ उलट गया था—दो-एक जड़ें लगी हुई थीं ज़मीन से । डाल-पत्ते सूख नहीं गए थे—दो-चार कोमल डालें निकली थीं। उनपर के कुछ पत्ते हवा में हिल रहे थे। पीपल वाला पेड़ जड़ से उखड़ गया था। बरगद का पेड़ जरासंध की नाईं दो टुकड़े हो गया था—किंतु दोनों ही टुकड़े बच रहे थे। लंबे-लंबे पेड़ बीच से टूटकर कबंध जैसे हो गए थे। घास का नाम-निशान नहीं। सब बालू से दब गई थी। नारायण भल्ला टोले में गया, पर उसे कोई नहीं पहचान सका। जो लोग थे, सब जैसे मरियल-से। कई हड्डियों के ढांचे-से लोग उस पेड़ तले बैठे थे। पेड़ की बहुत-सी डालें टूट गई थीं। छांह की परिधि संकरी हो गई थी। वे टुकुर-टुकुर नारायण की ओर ताकने लगे। जेलखाने की पाबंदी में रहकर, नियम से खाकर नारायण और भी तगड़ा हो गया था, देखने में और भी सुंदर हो गया था। रंग गोरा था, वह और भी साफ हो आया था। राम कहां है ? राम भल्ला ? —नारायण ने पूछा।

वे लोग चकित हुए।

राम भल्ला ? अजी, वह तो बहुत दिन हुए, गुज़र गए ! पिछले साल आंधी जो आई थी, उसमें एक पेड़ तले दब गए। कई स्त्रियां टूटे हुए मकान के टूटे ओसारे पर ओठंगकर मुर्दा जैसी ताक रही थीं।

उसने और कुछ नहीं पूछा। मन उसका वीरेन के लिए व्याकुल हो रहा था। वहीं जो दो-ढाई साल के वीरेन को छोड़कर वह चला गया था ! आज कितना बड़ा होगा ? दस-ग्यारह साल का ! कैसा हो गया होगा ? कितना बड़ा ? हृदय का घर करीब ही था। कहां ? कहां है ? वह ऊंचा कोठा ? ताड़ के पत्तों का छाया वह छप्पर—वही है ? हां वही।

हाय रे महाकाल का कोप !

घर के सामने का दरवाज़ा टूटा। खुला। अंदर जाते हुए वह ठिठक गया। छाती धड़फड़ कर उठी। उभककर झांका। चौंक उठा। घृणा से,

क्रोध से लमहे में उसका मन गर्म हो उठा। टूटे ओसारे पर एक साड़ी फैलाई हुई थी। साड़ी ! तो···! फिर भी अपने को जब्त करके उसने पुकारा—हृदय बाबू

फिर आवाज दी, हृदय बाबू ! बीरेन !

नारी-कंठ से किसीने जवाब दिया, कौन ?

अपना नाम बताने को जी न चाहा। कहा, हृदय बाबू हैं ?

जवाब मिला, हैं। बीमार हैं ! कौन हैं आप, अंदर आइए न !

बहुत ही आश्चर्य से वह अंदर गया। बोलने का सुर, स्वर की भंगिमा यहां से ऐसी बेमेल कि विस्मित हुए बिना न रहा गया। कहां की स्त्री है ?

उसने अंदर जाकर कहा, मैं बीरेन का मामा हूं।

एक काली, लंबी, दुबली-सी औरत बरामदे में खड़ी थी ! अवाक् नहीं हुआ। ऐसी ही प्रत्याशा की थी उसने। किसी भी अंग में बनावट की कुशलता का कोई रूप नहीं, फिर भी एक श्री थी। उम्र काफी। बीस की तो होगी ही। उस स्त्री ने अचरज से कहा, नारायण भैया !

नारायण ने आंखें फाड़कर देखते हुए उसे पहचानने की कोशिश की। कौन ? कौन ? सारा विश्व-ब्रह्मांड ढूंढ़कर भी लेकिन उसकी स्मृति का आविष्कार नहीं कर सका। लेकिन लगा, यह चीन्ही हुई है। इसे तो मैं पहचानता हूं।

उसने खुद ही अपनी पहचान दी। बरामदे से उतरकर उसे प्रणाम किया। कहा, मैं नीरू हूं।

नीरू ! गाज-सी गिरी। नीरू यहां ! यह दुबला शरीर, उसके मंजे हुए-से काले रंग की चमक पर अनमांजे कांसे के बर्तन जैसी एक छाप पड़ी है। पहनावे में ऐसा फटा कपड़ा, कलाइयों में शंख की दो चूड़ियां। मांग में सिंदूर।—नारायण काठ का मारा-सा खड़ा रहा।

नीरू ने कहा, लक्ष्मी दी चल बसीं। उनकी सूनी जगह मैंने पूरी की है। उस बार कोन्निगर में दलाली के लालच से इन्होंने ही मेरा रिश्ता किया था। मैं बिगड़कर चली आई थी। तेजी दिखाकर इनके यहां से भी चली

गई थी। मनुष्य का भाग्य ! उस दिन क्या पता था कि मैंने इन्हींकी हांड़ो में चावल डाले थे ! —वह हंसी।

पहेली-सा लग रहा था सब। खोपड़ी के अंदर, छाती के अंदर क्या तो जैसे हो रहा था। क्या कहे, कुछ समझ नहीं पा रहा था। हे भगवान ! वीरेन कहां है, यह बात भी उसके दिमाग में नहीं आई !

इतने में कमरे के भीतर से आवाज़ आई, नकियाई आवाज़, नी-रू, कौन हैं ?

नीरू ने कहा, मेरा नसीब देखो—वे हैं।

नी-रू !

नीरू अंदर गई। दरवाज़े के पास से ही कहा, नारायण भैया है, लक्ष्मी-दी का भाई।

—नारायण ! एक आर्त्त-सी चीख तिर आई—आंओं भाई। आंओं।

नीरू ने कहा, तुम्हें बुला रहे हैं। नारायण ने कहा, नहीं। नीरू हंसकर बोली, नहीं, नहीं चलो।

नारायण की छाती धड़-धड़ कांप रही थी। सारा शरीर पसीने से तर हो रहा था। फिर भी वह धीरे-धीरे दरवाज़े के पास जाकर खड़ा हुआ। देखा, हृदय एक कंकाल-सा फटे गंदे बिछौने पर पड़ा है। दुर्गंध से जी मिचला आता है। हृदय पुक्का फाड़कर रो पड़ा—क्षमा-क्षमा-मैं अब नहीं जीऊंगा।

नारायण बिस्तर के पास जाकर बैठा। उसके दोनों हाथ थामकर हृदय रोने लगा, हाय-हाय, मैं महापापी हूं। महापापी। क्या किया मैंने, छिः ! छिः ! सब तरह से तबाह हो गया हूं, और वह लड़की, उसका···

नारायण ने कहा, शांत होओ, शांत। क्या करोगे ? आदमी जो करता है, उसपर क्या उसका बस रहता है ? मार-पीट करके मैं कैद काट आया।

—कब छूटे ! ओह, तुम एक बहादुर हो ! —उसने स्नेह से उसके बदन पर हाथ रक्खा।

—आज ही। जेल से ही सीधे चला आ रहा हूं।—नारायण ने

मुस्कराकर कहा।

वालक कंठ की मां-मां पुकार सुनकर नारायण चौंका, वीरेन!

हृदय ने कहा, हां। वही-वही एक भरोसा है। मां को खोए हुए लड़के ने सच ही मां को पाया है। नारायण ने निकलकर देखा, सच ही नीरू की गोदी से चिपका है वीरेन—ठीक मां की गोदी से लगकर बैठने की तरह बैठकर वह उसे देखने के लिए दरवाज़े की तरफ ताक रहा है। खूबसूरत-सा लड़का सुंदर, वीरेन! दुवला, हड्डियां झलक रही हैं, लेकिन सजीव मुखड़ा! हूबहू दीदी की शकल!

गुसाईं ने कहा, भाग्य? वही सही। अर्थनैतिक अवस्था? वही सही। महाकाल के कुरुक्षेत्र में एक नारी की वलि? वही सही। जो भी वहाना किया जाए, वही सही।

नीरू बिगड़कर चली गई थी—अपनी चाची, नारायण की मौसी के साथ। वह पढ़ रही है, पढ़ेगी। उसके बाद अच्छे घर में उसका व्याह होगा। सुन्दर वर, सुन्दर घर—नगर में, महानगर में उनका घर। उसी समय तो वे लोग किराये के खपरैल में रहते थे, दमदम में मिट्टी के तेल की वत्ती जलती थी। लेकिन बिजली-वत्ती, पंखे का शौक तो था। शादी न हो तो पढ़ेगी, पास करेगी, मैट्रिक, आई० ए०, बी० ए०। स्कूल में मास्टरी करेगी। लेकिन व्याह भी नहीं हुआ, पास भी नहीं हुई। सोलह साल की हो जाने पर भी जब दरजा नौ में नहीं पहुंच सकी, तो पढ़ना छोड़ दिया। चाची हांफनी की मरीज़। उस समय तक भी कुछ पूंजी थी, लेकिन उससे उसका व्याह नहीं करा सकी। लड़के काली लड़कियों को नहीं पसन्द करते, पसन्द करते हैं तो रुपया मांगते हैं। रुपये नहीं थे। दो-एक बेकार-आवारा-गर्द मिलते थे, जो उसे व्याहना चाहते थे। नीरू ने उन्हें पसन्द नहीं किया। बोली, जहर खा लूंगी। नहीं तो घर से कहीं चली जाऊंगी। तब तक सन् चालीस आ पहुंचा। सन् इकतालीस में होने में नीरू की बदनामी फैली। चाची ने कहा, मर तू, मर जा, मर जा!

नीरू ने मरने के लिए मालिश वाली दवा पी ली थी। लेकिन पीते ही चाची के पास दौड़ी आई थी, चाची, मैंने जहर पिया है! नीरू का भाग्य! भाग्य ने ही भय दिखाकर उससे कराया, नहीं तो ऐसा करती क्यों? स्थानीय डाक्टर की दया से बच गई। पुलिस का हंगामा थोड़ा-सा हुआ था। वह भी मामूली घूस से खत्म हो गया था। इसके बाद चाची ने भी कुछ नहीं कहा, नीरू की भी शादी नहीं हुई। कलकत्ते में बीस-पचीस-तीस साल की क्वांरियों की कमी तो नहीं थी। नीरू मुहल्ले में दो-तीन बच्चों को पढ़ाया करती थी। पंद्रह रुपये मिलते थे। वह भी हर महीने नहीं। तकाज़ा करने पर लोग जवाब दे देते। तीन महीने का बकाया हो जाने पर एक-एक महीने का मिलता था। वह भी उस समय कम नहीं था। सन् बयालीस नहीं आया था। न आए, नीरू सत्रह साल पार कर रही थी। मुहल्ले के बिगड़े लड़के दिल्लगी करते, इशारा करते। मुंह बंद करके उसे बर्दाश्त करके नीरू चली आती। इस तरह उपेक्षा का कौशल उसने आप ही आविष्कार किया था। लेकिन हां, मुहल्ले के लोग, पुरनिये तथा और भी दो-चार जने उसे स्नेह-सहानुभूति की नजर से देखते थे। रूप न होने से, रुपया न होने से जिस लड़की की शादी नहीं होती, झूठे कलंक के दुःख से जो ज़हर खाती है, उसे स्वाभाविकतया स्नेह मिलता है। उसे भी मिला था।

उसके बाद आ गया सन् बयालीस का काल। महाकाल की चिनगारी बिखेरनेवाली बयार सर पर लिए सर्वनाश का साल। बाढ़ से, साइक्लोन से तकलीफ उठाई। लेकिन कलकत्ते में आदमी नहीं मरे—उनकी भी मौत नहीं हुई। लेकिन चावल-दाल की दर ऊंची हो गई। कपड़े की कीमत आग हो गई। चाची की पूंजी दो-तीन सौ रुपये पर आ अटकी थी। गहने तो उसके पहले ही सब जा चुके थे। आसमान की ओर निहारकर—होना होगा सो होगा कहकर फिर भी पड़ी थी। कलकत्ते में उस समय आदमी घट गए थे। रंगून का पतन होते ही लोग भागे। जिनके यहां नीरू बच्चे पढ़ाती थी, उनके यहां का एक परिवार चला गया। दो परिवार के दस

रुपये रह गए। उन लोगों ने भी कहना शुरू कर दिया, अब नहीं चल सकेगा। पूरा नहीं पड़ता है।

ऐसे में बीस दिसम्बर को बम गिरा। सवेरे से कलकत्ते में घबराहट फैल गई। इक्कीस छोड़कर बाईस तारीख को हाथी बगान में बम गिरा। नीरू की चाची 'ग्रां' करके आतंक से बेहोश हो गई। नीरू थर-थर कांप रही थी। वह आंखें फाड़कर कुछ देर ताकती रही, फिर दौड़कर चाची के पास आ बैठी। चीखी, मां! मां ! नहीं, चाची मरी नहीं। मर जाती तो नीरू का यह हाल कौन करती ? चौबीस को फिर बम गिरा। कलकत्ते के लोग डरी हुई गाड़र की ठाट की तरह भागे। जिनके जहां सींग समाए। जो भी चल सकता था, भागा। जिसके पास थोड़ा-बहुत रुपया-पैसा था, वह भागा। जिसके कहीं अपने-पराये थे, वह भागा। उसकी चाची को चलने की शक्ति नहीं थी, पूंजी भी न थी, अपना भी कौन था कहां ? नीरू की दीदी, उसके यहां के लोग भागे। भाई कहां है, जानती न थीं। वे कहां जाएं ? नारायण की याद आई थी, मगर वह तो बहन के टुकड़ों पर पलता है। वहां कहां जाएं ? चाची के नैहर का घर-द्वार गिर-पड़ चुका था, सुना था। वहीं क्या जाएं ! अंधेरा। नहीं, सब सुनसान। सर के ऊपर आसमान। उसपर उड़ता हुआ बममार जहाज। चाची हांफती और कहती, मर जाऊंगी। नीरू—मर जाऊंगी।

इसी बीच एक दिन किसीने नीरू का हाथ पकड़कर खींचा था। वह चिल्ला पड़ी थी। किस्मत से लोग-बाग आ गए, बच गई। सांझ से ब्लैक-आउट की रात ठोंगा पहनी बत्तियों में मानो कामुक दांत निकालकर हंसती हो। शाम से ही किवाड़ बंद करके बैठी रहती वे।

अचानक एक दिन हृदय की चिट्ठी मिली—लक्ष्मी मुझे मझधार में छोड़कर चली गई। नारायण को जैसा लिखा था, वैसा ही।

कै दिनों के बाद मौसी बोलीं, नीरू, चल, हृदय के यहां चलें।

—व-हां ? क्यों ?—नीरू उसी समय डर गई थी। मौसी ने कहा, अरी, समझ तो रही है, मेरे अब दिन नहीं, मैं मरूंगी। फिर···

—मां ? चाची !—नीरू और भी डर गई। उस घड़ी की कल्पना करके उसके आतंक की सीमा नहीं थी ! चाची रुकी नहीं। बोली, मैं मर जाऊंगी, तो तू क्या करेगी ? तुझे खींच ले जाएंगे। खाएगी कहां से ? किराये का मकान। मेरे पल्ले तो अब सौ रुपये भी नहीं। कितने दिन चलेंगे ? मकान मालिक निकाल बाहर करेगा। तुझे कोई आश्रय तो चाहिए। वहां नारायण है—लक्ष्मी मरी है, हृदय है।—और कुछ नहीं कह सकी, वह धौंकनी-सी हांफ उठी।

देर तक चुप रहने के बाद नीरू ने कहा, तो कहीं चलो चाची। दूसरे दिन वे दोनों यहां के लिए रवाना हो गए। महाकाल की बली देने के लिए आए। नीरू को फिर भी आशा थी, नारायण हो कहीं। नारयण भैया !—मन ही मन उसकी कल्पना करने की कोशिश की थी उसने।

गहरी रात में नीरू ने नारायण को यह सब बताया। हृदय कराहता, सो जाता, फिर जगता-कराहता। नीरू अंदर जाती, मुंह में पानी देती, पंखा झल देती, हृदय की आंखें लग जातीं, वह बाहर चली आती। नारायण चुपचाप बरामदे पर बैठा सुन ही रहा है। नीरू ने कहा, ऐसी कल्पना तुम्हारी नहीं की थी। कर नहीं सकी थी। तुम गजब के हुए हो नारायण भैया। पहले···! हंसकर बोली, हम आई। हमें देखकर पहले अवाक् हुआ। फिर लक्ष्मी दी के लिए पुक्का फाड़कर रोया।

चोट इसे खूब लगी थी। सचमुच ही लगी थी। नीरू ने कहा, आदमी ही तो है ! लक्ष्मी दी की लानत-मलानत चाहे जितनी करता हो, प्यार करता था उसे। शायद हो कि यह वह खुद भी न जानता हो। बदल भी गया है। सचमुच ही बदल गया है। उससे मेरी शादी हुई है, इसलिए नहीं कह रही हूं।

नारायण निर्वाक्। सुन ही रहा है। नीरू ने कहा, इसके सिवा, उस समय वह तबाह हो चुका था। युद्ध के मौके से धनी बनने के लिए सर्वस बेचकर मिलिटरी-ठीका लेने गया था। चोरबाजारी करने गया था। लेकिन सभी तो धनी नहीं हो जाते, फकीर भी होते हैं। यह फकीर

लेकिन जो स्वभाव है, जो अभ्यास है, वह शायद परिवर्तन से भी नहीं जाता। नहीं तो···

हंसकर बोली, चाची ने यहां आते ही सीधे कहा, बेटा, मैं तो मरूंगी। एक महीना कि दो महीने। इससे ज्यादा नहीं। मैं इस छोरी के लिए आई हूं बेटे। यह तो कहीं की न रहेगी। या तो चरम दुर्गति होगी—नारी-जीवन का सर्वनाश होगा। जभी आई हूं। तुम्हारा घर तो सूना है। लड़का छोटा है। या तो तुम्हें सौंपूं या नारायण को। सो तो कहते हो, नारायण जेल में है! उसने कहा था, वह बड़ा खौफनाक आदमी हो गया है मौसी, भयंकर। समझीं। चाची चुप हो गई थी। फिर बोली, यह तो जेल से ही साबित है बेटे! तो दया करके इस लड़की को तुम्हीं अपनाओ।

दया करके नहीं, बड़े आग्रह से ही अपनाया। मैंने आपत्ति नहीं की। मेरे लिए आपत्ति का क्या था! तेज? शक्ति? आशा? किसकी आशा? एक तुम्हारी।

नीरू चुप हो गई थी। नारायण ने कहा, रहने दो नीरू। नीरू ने कहा, तुम शरमा क्यों रहे हो नारायण भैया? देखो, तुमसे मेरा प्रेम तो वही दो-तीन दिन का! सच पूछो तो अच्छा लगा था। उस तरह से किसी लड़के से उसके पहले भी, उसके बाद भी कभी नहीं मिली। किसीने उस तरह से मुझे फूल तोड़कर नहीं दिया। किसीमें इतना साहस भी नहीं देखा। उसे ठीक प्रेम नहीं कहते। और तुम पढ़े-लिखे नहीं थे, इसलिए एक अवज्ञा भी थी। फिर भी इसकी तुलना में उस दिन मैंने तुम्हारी ही कामना की थी। लेकिन इसने झूठ ही कहा था, तुम गुंडे हो। आज देखकर लग रहा है, मैं ठगा गई। ठगा इन्होंने। इससे मेरी यह बात भी हुई है।

दस ही दिन के अन्दर ब्याह हो गया। चाची की बीमारी बढ़ गई। उन्होंने ही जिद पकड़ी। ब्याह हो गया। अजीब बात! मुझे कटु बात नहीं कही। पुरानी बात नहीं उठाई। सिर्फ हंसकर बोला, मजा देखो, उस दिन किस कदर नाराज हुआ था। सो उस समय क्या यह पता था कि तुम मेरी ही हांडी में चावल डाले बैठी हो? मैंने कहा था, चावल या चूल्हा, दो में से

कुछ भी तो नहीं है मुझे। भात के चावल की तो दूर रही। रहता तो वह मैं नहीं देती। विधाता देने भी जाता तो उसका हाथ मैं पकड़ लेती। दो मुट्ठी भात और इस टूटी छपरी की कीमत इतनी है, यह नहीं जानती थी। लेकिन इसने कहा था, मुझसे अन्याय हो गया, न ? हूं। लक्ष्मी से कहा था। और··· । हठात् बोल उठा था—नारायण से। फबता। छोरा योग्य हुआ है। तो ? अब क्या करूं ?

एक डर था उसे। लक्ष्मी दी की प्रेतात्मा का डर यह वहीं है या क्या, नहीं जानती। शायद हो कि दोनों हो। यह बीमारी उसीसे हुई। डेढ़ेक महीने बाद चाची मर गई। श्मशान गया। वहां से डरकर फख होकर लौटा। बोला, श्मशान में लक्ष्मी-दी ने उसे बुलाया है। शराब उसने पी जरूर थी। तबीयत ठीक भी नहीं थी। इधर का सत्यानाशी बुखार उस समय हो रहा था। उसे भी आया। उस दिन मुझसे कहा, मुझे जकड़कर पकड़े रहो। थर-थर, थर-थर कांप रहा था। डर से। बोला, नारायण से ही तुम्हारा ब्याह करा देता तो ठीक था। तुम भी सुखी होती। सिर्फ इस लड़के के लिए, समझा··· । इसके ठीक एक महीने के बाद बुखार के आवेग में लक्ष्मी-लक्ष्मी चीखकर मूर्छित हो गया। तब से खाट पकड़ी है।

सो—नीरू ने कहा—सो, वीरेन को पाकर मैं अपना दुःख भूल गई हूं नारायण भैया ! बड़ा अच्छा लड़का है। बड़ा मायावी। स्नेह का बेहद भूखा। ठीक तुम्हारे जैसा। मेरे कलेजे को उसने भर दिया है। मैं सारा दुःख भूल जाती हूं। रुको, मैं जरा उसे देख आऊं।

नीरू उठकर वीरेन को देखने गई। पति को भी।

नारायण का सारा हृदय नीरू के प्रति स्नेह से—हंसकर गुसाईं ने कहा—प्रेम से ही यदि कहें, प्रेम से जैसा उच्छ्वसित हो उठा, वैसा ही हृदय के प्रति घृणा और आक्रोश से भर उठा। उस घृणा, उस आक्रोश ने उसे अधीर कर दिया। नारायण कहता है, उसे उस रात की बात साफ याद है, अधीर होकर वह उठकर नदी किनारे चला गया था। डर तो नारायण को था नहीं। नदी का किनारा, बालू-भरा चौर शरत् की चांदनी से झलमला

रहा था। डेढ़ साल कैदखाने में बन्द था। उस रोज इतनी सुन्दर रात में, ऐसे सुन्दर चाँद पर खड़े होकर भी उसका मन शान्त नहीं हुआ। वह अपने को जब्त नहीं कर सका। खासा चिल्लाकर बोल उठा, तुम मरो, मर जाओ तुम, मर जाओ।

—नारायण भैया।—मीठे गले से पीछे से नीरू ने पुकारा। वह चौंक उठा। मुड़कर ताकते ही नीरू ने कहा, उठकर चले आए? चलो, घर चलो। नाहक क्यों उसे श्राप दे रहे हो। अपना सुख, इसीके लिए तो आदमी दुनिया में आता है। वह अभागा आदमी है। जानते हो, लक्ष्मी दी के डर से वह मुझको भी नहीं छू सकता है। उसके मरने में भी देरी नहीं है। एक डाक्टर आता है, वह बता गया है, हार्ट पर असर पड़ा है।

जितना खत्म होने को होना है, चाल उतनी ही तेज होती है। महाकाल के तांडव का भी यही हाल है। सन् तैंतालीस के बीच का समय। पैरों के घुंघरू की झुमझुम। करताल में झन-झन। उसमें आदमी के हृद्पिंड की ताल रखकर चलना सहज नहीं! चारेक दिन बाद ही हृदय मर गया। बैठे-बैठे ही मरा। सवेरे पीठ के पीछे तकिया रखकर उसीके सहारे बैठा था। मिजाज जरा चढ़ा होता। रात का भय तो जाता रहता न! उसके सिवा आराम पाने से जरा ठीक भी लगता। चाय के लिए, खाने के लिए चिल्लाया करता। नारायण चला आना चाहता था। हृदय ने नहीं आने दिया। कहा, अरे, दो दिन रुक जा! तू जब से आया है, लक्ष्मी के आंचल की खनखन नहीं सुनी। इसके सिवा तेरे प्रति मेरा बड़ा अपराध है। मैं मरने को हूं! समझ रहा है कि अब नहीं बचूंगा। नहीं! दो दिन ठहर जा। और फिर भाई···

उसका हाथ पकड़कर बोला, मेरे मर जाने के बाद इन लोगों का भार तो तुझे ही लेना पड़ेगा।

—हृदय भैया!

—चुप। सुन! कई बीघा जमीन थी। बेच चुका हूं। रोजगार करने

चला था ! ये लोग खाएंगे क्या ? और लड़के को पढ़ाना है। और यह स्त्री ? मौसी इसे तेरे ही हाथों सौंपने के लिए ले आई थी। तू उस समय जेल में था। फिर मेरी दुर्मति, मेरा लोभ और उसका नसीब। यही कैसे कहूं ? लक्ष्मी ने कहा था, मेरा बदन छूकर कहो कि तुम ब्याह नहीं करोगे। मैंने कहा था, नहीं करूंगा, नहीं करूंगा, नहीं करूंगा। वह बोली थी, मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकूंगी। मरकर भी नहीं। नहीं तो मैं तुम्हें ले जाने को लौटूंगी।

—यह तुम्हारे मन का भ्रम है। भ्रम—नारायण ने कहा :

—नहीं रे ! हृदय ने गरदन हिलाई। उसके बाद बोला, खैर, जाने दे यह बात। वह मेरी बात है, तेरी नहीं। तू न माने, मैं मानता हूं। अब—यह लड़की ? वीरेन, तेरा भानजा ? छुटपन में तू उसे प्यार करता था। तू आदमी अच्छा है। मैं जानता हूं, उसे छोड़ेगा नहीं। लेकिन यह लड़की! अरे, अभी से नदी पार के गुंडे इसपर नज़र लगाए हुए हैं। राज्य तो देख ही रहा है। अराजक है। वही लोग राजा हैं। इसकी रक्षा तो तुझे ही करनी पड़ेगी। ज़रा देर चुप रहकर बोला, मैंने अन्याय करके इससे शादी की है। यह तेरी ही कामना करके आई थी।

तीन दिन से रोज़ यही बातें हो रही थीं। उस रोज सवेरे बैठकर बोला, सुनता है, आज कुछ अच्छा लग रहा है। कल रात लक्ष्मी को देखा। क्रुद्ध-सा चेहरा नहीं। हंसमुख-सी।

सहसा बोला, सुन। अच्छा, आजकल तो लोग विधवा विवाह कर रहे हैं···। नारायण ने कहा, छिः ! ···

हृदय ने कहा, अरे, इन चार दिनों से उसे खुश जो देख रहा हूं मैं !

नारायण ने दृढ़ता से कहा, तो मैं आज ही चला जाऊंगा !

—लेकिन मेरे मरने की खबर पाकर आना। नहीं तो इस छोरी को बेजात लोग लूट ले जाएंगे।

नारायण खीजकर उठकर चला गया। जाकर नदी किनारे बैठ गया। ज़रा ही देर बाद एक भल्ला दौड़ता हुआ आया। बोला,

जल्दी। हृदय ठाकुर चल दिए!

—अरे!—चौंक उठा नारायण।

—जी। सहारे से बैठे थे। स्त्री दवा लेकर आई—पी लो। कोई जवाब नहीं। हिलाकर देखा—मर चुके थे। तैंतालीस की महामारी में लोग खड़े-खड़े मरे, बैठे-बैठे मरे; पेड़ पर से, छप्पर पर से गिरे मरकर—फल की तरह।

गुसाईं ने थोड़ा पानी पिया। उसके बाद बोला, ममता मधु भी है, मद्य भी। ममता सोने का धागा है, पर लोहे की जंजीर से मजबूत, और जिंदा सांप की तरह धीरे-धीरे लपेट लेता है। जो उसे तोड़ सकते हैं, वे या तो देवता हैं—महावीर या फिर जानवर। साधारण लोगों को उसकी लपेट में जितना कष्ट है, उतना ही आनन्द है। हृदय के श्राद्ध के बाद नारायण वह बंधन लेकर ही लौटा। दस दिन में श्राद्ध। इन दस दिनों में उस पार के गुंडे कम से कम बीस बार इस-उस बहाने इस पार का चक्कर काट गए। लीग का राज। बेचारे हिन्दू उस समय बड़े असहाय थे। अंग्रेज अंदर से चिढ़े। देश के नेता लोग जेल में बंद। गुंडे असहाय हिन्दुओं पर बेरोक जोर-जुल्म ढा रहे थे। हृदय का गांव बड़ा छोटा-सा, पंद्रह एक घर होंगे ब्राह्मणों के। सभी गरीब, दुर्बल, डरपोक। गांव का बल भल्ला लोग। राम भल्ला नहीं रहा। जो थे, सब कंकाल-से। उस पार का गांव विशाल। कुछ जाबिर लोगों का वास था वहां। उनके पृष्ठपोषक थे कुछ धनी लोग। नीरू ने संकल्प कर ही रक्खा था—जाऊंगी ही। नारायण सोने के धागे से बंध गया था। वीरेन उसका भानजा ठहरा। उसके प्रति बचपन से ही उसे ममता थी। और नारायण झूठ नहीं बोलता। सच बोलता है। उसने नीरू को प्यार किया था। मगर वह जानवर नहीं। नहीं, जानवर नहीं। दुनिया में नारी के प्रेम का मतलब ही जो देह-कामना लगाते हैं, वे कामुक हैं—विकृत मन के हैं—रोगग्रस्त मन के हैं। नारायण वैसों में नहीं। नीरू से उसने साफ ही कहा था, नीरू, मैं तुम्हारा अपमान नहीं करूंगा। फिर भी आदमी का वही मन है, कभी चंचल हो तो तुम्हें बताऊंगा। तुम

नाराज़ न होकर चली जाना।

नीरू ने उसे टिन का एक वक्स देकर कहा, इसे रक्खो। यह उसकी खाट के नीचे था। जमीन में। मुझसे कह रक्खा था। कुछ होगा। मेरे मरने के बाद निकाल लेना। उसमें सात सौ रुपये हैं और कुछ गहने हैं—लक्ष्मी दीदी के होंगे। इसे तुम जिस दिन की बात कह रहे हो, उस दिन खर्च-वर्च के बाद जो बच रहेगा, उसीके साथ लौटा देना। देखो, वह मुझसे कह गया है, विधवा विवाह का चलन हुआ है, लोग करते हैं, तुम भी करना। लेकिन वीरेन को छोड़कर, उसके मन को चोट पहुंचाकर तो ऐसा नहीं कर सकूंगी मैं। चलो।

भल्ला की गाड़ी लेकर चल पड़ा। कुछ दूर चलने पर नारायण को अपने गांव की याद आई। घाट बलरामपुर की। वह याद दुःस्वप्न-सी थी, दुश्चिंता। गांव में हलचल होगी। उसने पीछे पलटकर नीरू को देखा। रूखे बाल। दागी कांसे के बर्तन जैसी होते हुए भी उस काली स्त्री के मुंह की छाप के नीचे से चमक का एक आभास था। लम्बी। शंख की चूड़ियां फोड़कर सोने की पत्तर से मुड़ी ब्रोंज की दो-दो चूड़ियां पहने थी। एक उदासीन बेफिक्री से निर्लिप्त, प्रशांत। एक चैन से अनखीजी, जरा उदास। वीरेन ने सर घुटाया था। वह गोदी में रखकर लेटा था। नीरू ने उसकी नज़र देखकर जरा हंसकर कहा, क्या ?

हंसकर नारायण ने कहा, तुम्हींको देख रहा हूं।

अजीब हंसी हंसकर सर पर घूंघट खींचकर नीरू बोली, मुझे भी देखता है भला! नहीं देखना चाहिए।

नारायण ने कहा, देखता हूं और सोचता हूं, मैं नहीं देखूंगा। परन्तु वहां के लोग ? वे क्या कहेंगे ?

—जो भी कहें, कहें।

—लेकिन वे भी तो देखेंगे।

नीरू ने स्थिर प्रसारित दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा, वहां भी देखेंगे ?

—यह तो हर कहीं होगा नीरू। यही सोचता हूं।

विस्फारित नेत्रों निहारते हुए नीरू ने कहा, तुम बच नहीं सकोगे ? मैं क्या करूं, बताओगे ?

—उसकी चिंता मैं ही कर रहा हूं। तुम मत सोचो।

—मैं निश्चिन्त हूं।—कहकर वह गाड़ी की टप्पर से टिक गई और आंखें मूंद लीं। नारायण ने दुःस्वप्न जैसी चिंताओं को बार-बार विद्रोह करके मन से खेद दिया। कातिक का आरंभ। खेतों में इस बार वेहिसाब फसल। धान का इस बार अंत नहीं, हिसाब नहीं। आश्चर्य ! प्रकृति का हो या उस विधाता का, कैसा जोड़-तोड़ ! पिछले साल के इतने बड़े प्रलय के बाद—अकाल और महामारी से देश जब श्मशान हो गया—यह कैसा खेत ! काफी अच्छी बारिश ! खेतों में लहलहाती फसल—धान और धान ! लेकिन सारे खेत बोए नहीं जा सके। कंकाल हुए-से लोग छाती के बल पर खेतों की जुताई नहीं कर सके। सो न भी कर सके, पर धान इस बार बहुत था, बहुत। अजीब है आदमी का मन। या ऐसा हो कि आदमी का मन मामूली सुख के आभास से, प्रत्याशा से सारी दुश्चिताओं, सारे दुःस्वप्नों को भुला बैठता है। रात के अंधेरे में जेलखाना कलेजे पर सवार हो जाता था। बुरे सपने देखकर वह जग जाता—बाहर का गाढ़ा अंधेरा और काले-काले पेड़-पौधों के साथ उसके दुःस्वप्न को वास्तव का भ्रम दिलाते। लेकिन सुबह की रोशनी के धुंधले उन्मेष से ही चैन का निःश्वास फेंकना। स्वप्न याद नहीं रहते। इस बार खेतों की भरपूर फसल ने उसकी दुश्चिंता, उसकी विद्रोह-भावना को धूप जड़े एक हरे परदे से ढंक दिया। झलमला उठा। उस परदे को पीछे डालकर उसके मन में नई कल्पना उठने लगी। गाड़ी के झकोलों से भी वह न टूटी। राह चलते लोगों को देखकर भी वह विक्षिप्त नहीं हुआ। दूर-दिगंत में खो नहीं गया। इसी बीच वह भी सो पड़ा था। गाड़ी पर बैठा-बैठा ही सो रहा था। कल्पना टूटती थी, जुड़ती थी। आंखें खुल आती थीं और फिर आप ही मुंद जाती थीं। दोप-हरी हो रही थी। सोने का समय था यह !

एकाएक बंदूक की आवाज़ से नींद खुल गई। नज़र उठाकर देखा—उसके गांव के पास की झील है। बतखें आने लगी हैं। आदमी की व्याध-वृत्ति भी जग गई है।

बतखें उड़ रही हैं। बंदूक की मार की दूरी से बाहर भाग रही हैं। सामने खरपत की झाड़ियों के ऊपर बंदूक की नाल से धुआं उठ रहा है। उसीकी आड़ से गोली चलाई है। जाकर पूछने की उसकी वही इच्छा एक बार बिजली-सी मन में कौंध गई। दूसरे ही क्षण उसने अपने को सम्हाला। वेला काफी हो चुकी है। गाड़ी पर वीरेन और नीरू हैं। देरी होगी। उन लोगों की तरफ उसने देखा। वे भी जग गए थे। गरदन ऊंची करके झील को देख रहे थे। वीरेन बोल उठा, उफ, कितनी चिड़ियां! अरे बाप रे, मां, देखो-देखो।

नारायण ने कहा, हमारे गांव की झील है। हज़ारों-हज़ार बतखें आती हैं।

वीरेन ने उत्साह के साथ कहा, पाली नहीं जा सकतीं?

नारायण हंसा—नहीं। जंगली बतखें हैं।

नीरू ने कहा, अहा, बड़ी सुंदर झील है! नहाने को जी चाहता है। जानते हो, आत्महत्या करने से यहां झील में डूब मरना ही अच्छा है।

—क्यों, ऐसा क्यों कहती हो? वीरेन है। इसे आदमी बनाना है। हमें स्नेह-भरा एक संसार बनाना है। मैं सुख के साधन जुटाऊंगा, तुम शांति का घट भरना। वीरेन हमारी आशा···

—कहां की गाड़ी है?—गंभीर गला। उस स्वर में एड़ी से चोटी तक मालिकाना मिज़ाज था। चौंक उठा नारायण। नीरू की ओर से मुंह फेरकर उसने सामने की तरफ देखा। वह पहचान गया। हां, वही है। घास के जंगल से बाहर निकलकर भूतनाथ बाबू खड़े हो गए। साथ में एक प्यादा। और भी दो आदमी। खेतिहर किस्म के। वह अवाक् हो गया। नहीं, अवाक् से भी ज़्यादा। स्तंभित हो गया। वे दोनों एक-दूसरे को देखने लगे। लेकिन बोली नहीं। लगा, भूतनाथ बाबू कुछ कहना चाह रहे हैं।

पर नारायण दांतों पर दांत दबाए रहा। नजर सामने फैला दी। उसके मन में पल में ही दप् से आग जल उठी। क्षोभ! आक्रोश! मगर यह क्या? यह भी संभव है? वही भूतनाथ बाबू? सर्वांग में एक चमक, अंग-अंग में आभिजात्य का एक लावण्य था। वही हैं ये? एक अजीब मोटा वीभत्स-भयंकर आदमी। लाल आंखें। उनमें कैसी उग्र और रुष्ट दृष्टि! बदन पर महज एक गंजी। एक हाथ में बंदूक, दूसरे में दो मरी हुई बनखें। होंठों के दोनों किनारे पान की लाली बह रही है! साथ के प्यादे के हाथ में बोतल। प्यादा डपट उठा, ऐ गाड़ीवान! सुनता नहीं है? कहां की गाड़ी है?

भूतनाथ ने स्थिर दृष्टि से देखते हुए ही कहा, जाने दे। नीरू ने पूछा, यह कौन है नारायण भैया?

—यह? यही है। भूतनाथ बाबू, जिसके साथ झगड़कर मैं जेल गया था।

नीरू सिहर उठी—हाय मेरी मां! कैसा खौफनाक आदमी है!

—डर लग रहा है?—नारायण ने हंसकर ही पूछा। नीरू पलट गई—नहीं। डर क्यों लगने लगा? तुम हो, मैं क्यों डरूं?

गाड़ी गांव में दाखिल हुई। सामने बाउरी टोला। उसीके बगल से रास्ता गांव के अंदर गया है। बाउरी टोले के बाद कुछेक कट्ठे परती जमीन के बाद ही उसका घर। नारायण ने घर की ओर ताका। घर था। पूरा ही घर था। लेकिन मार बहुत खाई थी। बहुत-बहुत झोंके खाए थे। सामने जो नया घर बनाया था माटी का, उसका छप्पर नदारद था। टूट-कर ओसारे पर ही कंकाल-सा पड़ा था। उसके आने के अंदाज से विपिन आकर खड़ा हुआ—नारायण भाई! आ गए?

नारायण बोला, नीरू, उतरो। उतर बीरेन!

वे सब उतरे। विपिन ने कहा, भानजा है? नारायण ने कहा—हां। खबर मालूम तो है। मैंने भेजी थी। उसने भेजी थी खबर। विपिन ने कहा, हां! आः! एक ही साल के अंदर। और—ये? नारायण ने

कहा, यही नीरू है। मौसी के जेठ की लड़की। मौसी ने ही पाला। आसाढ़ महीने में हृदय से इसका व्याह हुआ था। उसके बाद नारायण ने कहा, गांव की यह शकल क्या हो गई है विपिन भैया? विपिन बोला, सब मरे हुए हैं नारायण भाई, सब मरे और अधमरे हैं। भगवान सबको मार गए हैं। जो भी जान बची थी, वह भी नहीं रहेगी। भूतनाथ चटर्जी गले पर पांव रखकर खड़े हैं। नारायण बोला, देख आया उन्हें। गांव में घुसते ही भेंट हो गई। कैसी शकल हो गई है।

—चुप! मत बोलो। मुंह की तरफ ताकने की भी हिम्मत नहीं होती किसीकी!

सचमुच! विपिन का कहना अक्षर-अक्षर सत्य था। भूतनाथ की तरफ ताकने का भी कोई साहस नहीं करता, बात कौन उठाए? उसके किसी काम का कोई क्या विरोध करे? पहला परिचय उसी दिन मिला। अपने घर की सफाई कराने के लिए वह बाउरियों को बुलाने गया। वे लोग सिर खुजाने लगे···जी···ठाकुर! नारायण ने कहा, बात क्या है? मैं पैसे दूंगा। वे बोले, जी, पैसे की बात नहीं। सेहत किसीकी अच्छी नहीं है न! नारायण ने कहा, कोई बात नहीं। पांच की जगह दस जने चलें। कन्हाई बोला, ठाकुर राय के यहां से पूछे बिना जाएं तो कैसे? आपसे एक टंटा तो है। नारायण स्तंभित रह गया। नारायण ने फिर कहा, उनका अभी प्रबल प्रताप है। सरकार मुट्ठी में। वैसा ही शासन और फिर दान-पान वही देते हैं। गरीबों के लिए इधर सात-आठ महीनों तक लंगर चलाया।

नारायण लौट आया। नारायण नारायण ही है। उसने विपिन को भी नहीं बुलाया। कुदाली उठाकर भिड़ गया। नीरू से कहा, तुम भी जुट जाओ। खुशी-खुशी नीरू-बीरेन दोनों जुट गए।

विपिन निकला। बोला, तुम लोग छोड़ दो त्रिटिया। हम दोनों भाई मिलकर कर लेते हैं।

नारायण ने पूछा, तुम करोगे विपिन भैया ?

—हां। दुनिया में सभी नहीं मर जाते भैया, कुछ-कुछ जिंदा भी रह जाते हैं, नहीं तो परलय तो बहुत बार हुआ है। दुनिया है कैसे ?

शाम को विपिन ने सारी बातें बताईं। रसोई नहीं थी। विपिन की मां बीमार है। वह नारायण की भिक्षा-मां है। उसीने न्योता किया था। सामान विपिन की बहू ने कर दिया—रसोई नीरू ने कर ली। विपिन ने सब बताया। बाढ़, आंधी, अकाल, महामारी—एक ही साथ प्रलय की तरह आए और मानो माथे पर मूसल मारकर तमाम देश को बदहवास कर गए। और जाते-जाते अपना मूसल मानो भूतनाथ को दे गए। हाथ में वही मूसल लिए वह मानो प्रलय का प्रहरी होकर घूमता फिर रहा है।—और क्या बताऊं ?

न:, बताने को कुछ नहीं है। उसके बाद कई दिनों तक वह इलाके में घूमा। इलाका वास्तव में मरे हुओं का है। कठोर आघातों से प्राण-शक्ति सिर्फ धीक रही है। जो आदमी थे, वे भी आदमियत खो चुके हैं। अजय हाजरा हड्डियों का ढांचा रह गया है। शिबू डाक्टर अपने गांव की ओर लंगर चला रहा है। दो-चार मीटिंगें करता है। झंडा उनका लाल है। बड़े-बड़े किसान सन्न हैं। गरीब भले मानुसों की आंखों में डरी हुई बेबस निगाह। भाषा नहीं। शक्ति नहीं ! गरीबों की स्त्रियां पेट की जलन से देह बेच रही हैं। और ऐसे में हाथ में मूसल लिए महाकाल के तांडव का अनुचर यह भूतनाथ चटर्जी ! वह अभी यूनियन बोर्ड का प्रेसिडेंट है। सरकार में पैठ-पहुंच है। सरकारी कर्मचारी उसके यहां आते हैं, दरोगा उसकी खातिर करता है। वह गरीबों को खाने को देता है, उनपर शासन करता है। दान करता है और सताकर वसूल करता है। बंदूक लेकर झील में बतखों का शिकार करता है। उसके लोग शराब चुलाते हैं, वह भरपेट वही शराब पीता है। सारा इलाका उसका देनदार है, सारे इलाके पर वह शासन करता है। सारे इलाके पर जुल्म करके वसूल करता है। और फिर, इस इलाके का वह दाता है। गांव में प्राय: रहता नहीं है—यहां से

कोस-भर के फासले पर एक बगीचा-महल बनवाया है—वहीं जाता है। वहीं रहता है। फिर आता है। सभी भले लोगों से नाता तोड़ लिया है। उसके साथी हैं दो लठैत और कुछ खूंखार किसान।

विपिन ने कहा, बस वही शराब ! शराब से ही ऐसा हो गया ! और समझा, शराब के साथ जो सब जुटता है ! उसके साथ क्षमता। सिर्फ आग नहीं, आग और हवा, उसके साथ घास-पात-घी। जिससे आग दहकती है। वही सब मिला-जुलाकर जो है, वही यह आदमी है। आदमी यह बिगड़ैल था, दंभी था, मगर बुरा तो नहीं था। धान के कर्ज़ का सूद छोड़ देनेवाली बात तो याद है न !

नारायण ने कहा, हां। वह भी सोच रहा था। विपिन ने कहा, सन् बयालीस में भी यह आदमी स्वदेशी आंदोलन में हाथ बंटाने गया था—अगस्त के महीने में। शराब पी थी, इसलिए कांग्रेस के लोगों से झगड़ा हो गया। लौट आया। बोला, धत्तेरे आंदोलन की ! उसके बाद, रूपलाल यूनियन बोर्ड का मेंबर था, उससे इस्तीफा दिलाया और खुद मेंबर बना। उसके बाद परसिडेंट बना। खूब खैरात की। ज़रा चुप रहकर बोला—इधर-उधर देख लिया,—समझे, यह दौलत-जायदाद ससुर की न होकर अगर उसके बाप की होती, तो ऐसा नहीं होता। समझे ! रुपये-पैसे के लिए इतनी ललक, इतना अत्याचार करके वसूली, समझे, यह इसीलिए है। तिसपर रूपलाल ने उसे औरत का नशा लगा दिया। जाने कहां से एक भूख से मरनेवाली विधवा को उठा लाया··· खुद ही ले आया था। उसे देखकर यह बौराया। उसके बाद शुरू हुई लड़ाई। रूपलाल को गड्ढे में गाड़ दिया। औरत को छीन लिया। रूपलाल अब उसका दुश्मन है। मगर उसका क्या बिगाड़ेगा ?

नारायण तब भी सोच रहा था—सिर्फ एक छोटी-सी हुंकारी भरी उसने। वह सोच रहा था अपनी बात। उसने भगवान को पुकारा, भगवान, थोड़ी-सी सहन-शक्ति देना। नहीं तो एक लड़का और वह जवान स्त्री बेपनाह हो जाएंगे ! किंतु···। अचरज है, इन डेढ़ वर्षों में ऐसा भीषण

और भयंकर हो गया ! पृथ्वी का मालिक क्या शैतान हो गया है ! शैतान ने भगवान का वध कर दिया—या छाती पर उसकी पत्थर बांधकर उसे हतचेतन कर दिया !

—कैसे हो गया ? सो नहीं जानता । कभी सोचता तो नहीं हूं न । मगर हो गया हूं । आंखों देखो । भूतनाथ ने खुद ही कहा था । नारायण ने सुना था । एक दिन हिरनहाटी स्टेशन से वह गाड़ी पर सवार हुआ । शहर जाना था, जिला विद्यालय निरीक्षक से मिलने । पाठशाला को उसने फिर से चालू किया था । अनुदान के लिए दरखास्त देनी थी । उसके डब्बे के पास ही ड्योढ़ा दरजा था । ड्योढ़े दरजे के बाबू से बात कर रहा था भूतनाथ । उसे बुलाकर उस बाबू ने कहा, यह कैसी शकल हो रही है तुम्हारी ? भूतनाथ ने हहा-हहा हंसकर कहा, बेहद बुरी । भीषण । भयंकर न ? मैंने आईने में देखी है । भले आदमी ने पूछा, कैसे हुआ ? उतना अच्छा था चेहरा तुम्हारा ! भूतनाथ फिर हंसा । बोला, कैसे हुआ, नहीं जानता । कभी सोचता नहीं हूं । लेकिन हो गया हूं । आंखों देखो । उस हंसी से बड़ी बेचैनी महसूस की नारायण ने । भूतनाथ ने नारायण को भी देखा था । एक बार उसकी तरफ ताका भी था । उसके बाद बोला, देखो, एक मशहूर चित्रकार ने एक सुंदर-से बच्चे को देखकर उसकी तसवीर बनाई थी । तसवीर भी बड़ी अच्छी बनी थी । उन्होंने उसका नाम रक्खा था 'देवदूत' । बड़ा नाम हुआ उनका । कुछ दिनों के बाद उनके जी में आया, उसका ठीक उलटा एक चित्र बनाएं । पिशाच । वे ढूंढ़ने लगे । जैसा चाह रहे थे, वैसा घिनौना और भयंकर उन्हें कहीं ढूंढ़े न मिला । तब उन्होंने जेलखाने में देखना शुरू किया । आखिर एक खौफनाक कैदी मिला । देखने में भयंकर । इजाजत लेकर वे उसकी तसवीर बनाने लगे । एक दिन वह कैदी हंस रहा था । उन्होंने पूछा, हंस क्यों रहे हो, यह तो कहो ? वह बोला, देखो, मैं जब छोटा था, तब मेरा खूबसूरत चेहरा देखकर एक ने मेरी तसवीर बनाई थी । नाम दिया था 'देवदूत' । चित्रकार हक्का-बक्का हो गया । बोला, तुम वही हो ? उसने हंसकर कहा, मैं वही हूं ।

उन्होंने पूछा, तुम ऐसा कैसे हो गए ? उसने कहा, सो तो नहीं मालूम, पर हो गया हूं। मैं वही हूं। सो दोस्त मेरे, मैं वही हूं।

मित्र दंग रह गया। उसके साथ-साथ नारायण भी। मित्र ने कहा, लेकिन हो कैसे ? भूतनाथ ने हंसकर कहा, अपने प्रबल प्रताप से हलचल मचाता हुआ मजे में हूं। शराब पीता हूं। इलाके के लोग डरते हैं, मेरे मरने की कामना करते हैं, मैं मरता नहीं हूं। खबर मिलती है, मुझे मारने की साज़िश हो रही है, मगर मैं निडर घूमता हूं। मैं नहीं मरूंगा।

गाड़ी चल पड़ी। भूतनाथ बाबू मास्टर-मास्टर करते हुए स्टेशन में घुस पड़े। नारायण तमाम रास्ता सोचता ही गया।

कैसे हुआ, नहीं जानता; मगर हो गया हूं। होता है। और रास्ते-भर वह कहानी भी सोचता रहा। कैसा खौफनाक। हां, ठीक ही कहा, हो गया है। कैसे हुआ, क्यों हुआ—यह नारायण नहीं जानता, नहीं समझ पाता, पर हुआ है। उसे और भी आश्चर्य लगा कि भूतनाथ को यह मालूम है कि इलाके में उसके बहुत-से दुश्मन हो गए हैं। रूपलाल उसका दुश्मन है, फेला मंडल उसका दुश्मन है, वह भूषण पाल उसका दुश्मन है, किस्टो दास उसका दुश्मन है, कन्हाई बाउरी उसका दुश्मन है। दुश्मन उसके बहुत हैं। शिबू डाक्टर भी उसका दुश्मन है—दुश्मन न हो चाहे, विरोधी है—सक्रिय शत्रु शायद नहीं है। फिर भी वह निडर घूमता-फिरता है। दिन में ही नहीं, वह रात में भी चलता है—गांव पार करके, नदी पार करके खेतों से होते हुए वन-जंगल के बीच के रास्ते से अपने प्रमोद-भवन में जाता है, या प्रमोद-भवन से गांव लौटता है। अक्सर पैदल ही—कभी-कभी गाड़ी से। साथी कभी एक, कभी दो, कभी चार। निस्तब्ध रात उसके भारी पैरों की आवाज़ से चौंकती है, उसके लड़खड़ाते गले की डांट से सिहरती है। आदमी ऐसा खौफनाक हो उठता है, यह उसने सुना था, देखा नहीं था। डकैतों को वह जानता है। राम भल्ला को जानता था। वे सब इससे कहीं डरपोक हैं। वे लोगों की भनक से डरते हैं—यह तो खदकर लोगों को ललकारता है।

काल—काल के सिवाय इसकी और कोई कैफियत नहीं। बहुत युगों की, शायद हो कि शताब्दियों की ग्लानि जम-जमकर एक काल आता है—विपाक्त काल, भयंकर काल,—वह काल ऐसा ही आदमी तैयार कर दे जाता है। यह मरता है। पर मारे कौन? वैसा आदमी कहां? वह? नहीं। उसने तो वीरेन का, नीरू का भार लिया है। उसे शांति चाहिए। शांत जीवन। सोचते-सोचते ही वह शहर गया, सोचते-सोचते ही गांव लौटा। पाठशाला को अनुदान नहीं मिला। मार-पीट करके सजा काटी है। मन तीखा ही था, पर उसका संकल्प तिक्त नहीं हुआ, शिथिल नहीं हुआ। वह शांत जीवन, शांति चाहता है। नीरू और वीरेन के साथ शांत गिरस्ती।

बेला देखकर गुसाईं थमा। पानी का जग और गिलास टेबिल पर था। बीच-बीच में पानी पीता था। अबकी ढक-ढक करके सारा पानी पी गया। मैंने धीरेन से कहा, पानी ला दे।

गुसाईं ने स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर ताका, सूरज क्षितिज की ओर उतर गया था, पेड़ों की आड़ में चला गया था। डूबते हुए सूरज की अंतिम किरनें तिर्यक गति से ऊपर की ओर छितरा गई थीं। पश्चिमी आकाश में इसी बीच बहुत टिमटिमाता-सा होते हुए भी शुक्राचार्य उग आया था। गुसाईं ने कहा, अब आंखें जुड़ाईं। आः!

मैंने पूछा, उसके बाद गुसाईं? मैंने सुना है, उसे मरना भी पड़ा था। उसे काल लाया था—उसे काल ने ऐसा किया था कह रहे हो, सो ठीक है, मानता हूं मैं। और फिर काल ने ही उसे खत्म किया। आदमी चिरजीवी था नहीं। और उसके नाश का आयोजन भी काल ही करता है। छोड़ो यह बात। लेकिन उसने तुम्हारा क्या किया था? तुम्हारा कुछ बिगाड़ा था, या… कहने से मुझे हिचक हो रही थी।

मेरी बात गुसाईं ने भांप ली। उसने कहा, किया था। पापी के वध के लिए नारायण भगवान के अंश से नहीं पैदा हुआ था। वह मामूली-सा

छोटा आदमी। लेकिन बुद्धि-विवेक उसे है। लेकिन वह विवेक-बुद्धि उस समय नहीं थी। उसने उसकी छाती में छुरा घोंप दिया था, माथे पर लात मारी थी। अब विचार करके उसने देखा है। देखा है, उस माथे पर लात पहले मारी थी, इसका आक्रोश उसे था। देखिए, उसने नारायण की प्रतिष्ठा छीन ली थी—लोगों के कष्ट का लाभ उठाकर उनका उपकार कर के नारायण उस समय जेल में था।—सच पूछिए तो वही उसका कारण था। अपना गुस्सा उसकी जड़ था—उसी गुस्से से थप्पड़ मारकर उसने रूपलाल के दांत तोड़ दिए थे। तो भी अपने विचार से उस आदमी को वह उस दोष से रिहा नहीं कर पाया। आक्रोश था। वीरेन और नीरू को पाकर उसका जी भरा था। कलेजा भरा था। किसे ज़्यादा चाहता था, कहना कठिन है। वीरेन को या नीरू को! शायद हो कि नीरू को ही। लेकिन संसार जिसे पाप कहता है, उसने वह नहीं किया, नहीं किया, नहीं किया। और जिसे पाप कहते हैं, वह तो प्यार में नहीं है, उसका स्वाद अलग है, ज़ोर अलग है। गरीब के धनी हो जाने पर जिस प्रकार दुनिया पर से उसका आक्रोश घट जाता है, मिट जाता है—वैसे ही मिट गया था, भूतनाथ के प्रति भी आक्रोश घट गया था। बल्कि उससे झगड़ने से इन लोगों का नुकसान होगा, उसे इसका भी डर हुआ था। ट्रेन की बात तो बताई। नारायण सोचते-सोचते शहर गया था। स्कूल निरीक्षक ने अनुदान नहीं दिया। सोचा था, लौटकर भूतनाथ के ही पास जाएगा। ऊपर वालों में अभी उसकी बड़ी खातिर है। यूनियन बोर्ड का प्रेसिडेंट है—उसीसे स्कूल निरीक्षक को कहलवाएगा। एक बात नहीं कही। कहता हूं। अगस्त आंदोलन के समय यहां तीन-चार दल काम कर रहे थे, बताया है। उन लोगों ने तै किया था, आंदोलन के समय तीन यूनियनों को लेकर वे एक स्वाधीन इलाका बनाएंगे। उसमें भूतनाथ भी था। एक यूनियन का वह प्रेसिडेंट था। लेकिन बनदा बाबू को पहले ही पुलिस ने पकड़ लिया। हीरालाल बाबू यहां से छोड़कर कलकत्ता चले गए। वे एक चिनगारी थे—यहां जलने लायक इंधन उनके लिए नहीं था। यहां सिर्फ घास ही घास। वे

महावन की ओर चले गए। लेकिन उनके दल का हुक्म आया—अंग्रेजों से सहयोग करना होगा। शराबखोरी के चलते कांग्रेस की भूतनाथ से नहीं बनी। उसे अंग्रेजों ने पाया। सरकारी कर्मचारी उसकी खातिर करने को मजबूर थे। भूतनाथ बाबू सरकारी निरीक्षक से कह देते, तो काम बन जाता। वही कह देगा, यही सोचकर उस दिन नारायण लौटा। सांझ के समय उस रोज आसमान में वह तारा नीला-सा होकर झलमला रहा था। देखकर वह सोच रहा था, उस तारे जैसा ही शांत, मीठा, आंख जुड़ानेवाला घर वह आकाश के एक किनारे की तरह दुनिया के एक किनारे बसाएगा।

स्टेशन से भी सोचते ही सोचते आकर नारायण गांव में पहुंचा। जरा सोचा, किस रास्ते से जाए? सदर रास्ते से जाने पर पहले ही पड़ता है रायों का घर, राय टोला; उसके बाद भट्टाचार्य टोला, उसके बाद सद्गोप टोला, और तब उसके बाद उसका घर। उधर कई घर बाउरी और बागदी हैं। उसके बाद खेतों का सिलसिला, फिर झील। एक दूसरा रास्ता गांव के बाहर-बाहर है—दो तालाबों के बांध से बाउरियों के बड़े टोले के अन्दर से किसिन के घर के बाद उसका घर पड़ता है। इस रास्ते से बाउरी लोग चलते हैं, लोग खेतों की ओर जाते हैं, निर्जन है। जो बस्ती से कतराना चाहते हैं, वे भी जाते हैं। जब से यहां आया है, नारायण इसी रास्ते से चलता रहा है। सजा काटने की शर्म से नहीं। उसने शर्म का तो काम किया नहीं। मन का क्षोभ। बिना कसूर के उसने लोगों का प्यार खो दिया है, इसलिए। और कोई खास करके अवस्थावाले लोग उससे मजाक करते हुए कहते, बाउरी टोले का मालिक। बाउरियों का संगठन था, लोगों को भी तो असुविधा थी। वह मालिकाना चले जाने से नारायण को भी लगता था, वह तबाह हो गया है। उसे यह तो क्षोभ था, इसी क्षोभ से वह किसी के पास नहीं गया, किसी से नहीं मिला, इस बाहर-बाहर वाले रास्ते से ही चला करता। जाते वक्त भी वह इसी रास्ते से स्टेशन गया था। लौटते वक्त गांव के मोड़ पर ठिठककर उसने सोचा। उसके बाद उसने सदर रास्ता

पकड़ा। बस्ती के बीच से रायों के घर के सामने होते हुए भट्टाचार्य टोला होकर जाएगा। क्षोभ है तो है, दो-चार जनों से भेंट होगी, उन सबसे बातें करके जाएगा। विश्वबंधु के घर में कोई नहीं है। उसने मां-बाप-स्त्री के साथ कलकत्ते में डेरा लिया है। फिर भी दूसरे लोग तो हैं। बोल-बतिया लेगा। अपनी बात की भूमिका कर लेगा। अगर भूतनाथ बाबू से भेंट हो जाए? फिर ठिठक पड़ा था—हां, उससे भी बात कर लेगा। और वह बस्ती में दाखिल हुआ, और भेंट भी हो गई। भूतनाथ अपने उन संगियों—प्यादा-गुमाश्ता-मंडल—के साथ बैठा था। भट्टाचार्य टोले के भी दो-एक छोकरे थे। उसका मन, उसका कलेजा कैसा तो कर उठा। जी में आया, लौट जाए। फिर जी में आया, बिना बोले हनहनाता हुआ निकल जाए। लेकिन उससे पहले ही प्रश्न आया—कौन? स्वयं भूतनाथ बाबू ने पूछा। नारायण आगे बढ़ा। एक ही संभाषण से भयभीत हुआ। जाकर नमस्कार करके बोला, जी, मैं हूं। गुसाईं। भूतनाथ ने कहा, गुसाईं। हूं। मगर तुम्हारे तो दोनों ही कान हैं! नारायण समझ नहीं सका। कहा, जी? भूतनाथ ने कहा, इतने बेवकूफ नहीं हो गुसाईं। एक बात है, एक कान कटा आदमी गांव के बाहर-बाहर जाता है, दोनों कान कटे वालों को हया-शरम की बला नहीं। वे गांव के बीच से चलते हैं। मगर तुम्हारे तो दोनों ही कान बरकरार हैं भाई! उसकी पीठ पर औचक ही जैसे चाबुक पड़ा। पल में नारायण तनकर खड़ा हो गया। बोला, मतलब? भूतनाथ ने सिगरेट का धुआं उड़ाकर कहा, गलती मेरी ही है। तुम्हारे दोनों ही कान नहीं हैं। ये दोनों नकली कान हैं एक कान कैद काटकर गया, दूसरा गया रखैल रखकर। तुमने गांव में समाज के सामने घर में रखैल को रक्खा है? नारायण तन गया। फिर भी गुस्से को उसने भरसक दबाया। दबाना पड़ा। यह तो रूपलाल नहीं है। रुखे क्रोध से वह बोल उठा, जो ऐसा कहता है, उसके सिर पर गाज गिरेगी। भूतनाथ हा-हा करके हंसा। हंसकर बोला, गाज इन्द्र के हाथ में है और इन्द्र तुम्हारा नौकर नहीं है। लोगों ने कहा है, मेरे सामने कहा है, तुम घर में एक औरत को रख रहे हो। तुम जिस दिन यहां आए, उस दिन

मैंने भी देखा। कौन है वह? नारायण ने कहा, वह वीरेन की, मेरे भानजे की मां है। भूतनाथ ने कहा, सौतेली मां? तुम्हारी कौन है? बहन की सौत बहन नहीं होती। नारायण को तुरन्त कोई जवाब नहीं मिला, उसके बाद बोला, वह मेरी छोटी मौसी की पाली हुई लड़की है। भूतनाथ ने कहा, हां-हां, पाली हुई लड़की! मौसेरी बहन नहीं। तुमसे भी उसकी शादी हो सकती थी। नारायण चुप हो गया। सच ही इस बात का जवाब नहीं। भूतनाथ ने कहा, सुनो गुसाईं, उस स्त्री के साथ तुम्हारा एक घर में रहना नहीं चल सकता। समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। सुनो, उसे ले आए हो, अलग घर में रक्खो। मैं घर देता हूं। सुना है, वह पढ़ी-लिखी भी है। मैं लड़कियों की एक पाठशाला खोल देता हूं। वह पढ़ाए। लेकिन यह सब नहीं चल सकता।

घृणा और क्षोभ से नारायण अधीर हो उठा था। उस समय उसके मन के सामने विश्व-ब्रह्मांड तुच्छ और क्षुद्र हो उठा था। वह बोला, मैं समाज को नहीं मानता। आपकी बात भी मैं समझता हूं। मैं नफरत करता हूं। नफरत करता हूं। सुनिए, अपने जीते-जी मैं उसे बाघ और सांप के मुंह में नहीं छोड़ दे सकता। आपसे जो बने कीजिए।—कहकर वह हनहनाता हुआ चला गया।

नीरू ने सब कुछ सुनकर कहा, इसी बीच तुम अपनी बात भूल गए नारायण भैया? नारायण की भौंहें सिकुड़ गईं। बोला, कौन-सी बात? नीरू ने कहा, आते वक्त गांव में पहुंचते समय तुम मुझे देख रहे थे। मैंने कहा, देखना नहीं चाहिए। मत देखो। तुमने कहा था, गांव के लोग देखेंगे और देखकर क्या कहेंगे, यही सोच रहा हूं। मैंने कहा था, कहें सो कहें। यह तो जानी हुई बात है। वीरेन नहीं रहा होता तो मैं तुम्हें बर्दाश्त करने को नहीं कहती, मैं भी बर्दाश्त नहीं करती। तुम्हें रिहाई देकर चली जाती। लेकिन वीरेन, वह तुम्हारा है, वह मेरा है। उसके लिए जो सहना होगा, मैं सहूंगी। तुम भी सहो। नारायण ने एक लम्बा निःश्वास फेंकते हुए कहा, सहूंगा, सहूंगा नीरू!—और उठकर उसने जाकर सिर पर एक

लोटा पानी उंडेला—अगहन की उस रात में। थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ने लगी थी। उसके बाद एक लोटा पानी पीकर वह वीरेन को पढ़ाने बैठ गया। वीरेन की उम्र नौ साल की हो चुकी थी, पर देखने में दुबला था, छोटा। चेहरा मां जैसा, कुछ-कुछ नारायण से मिलता-जुलता।

बुद्धि खूब तेज़ नहीं थी, पर बड़ा मीठा स्वभाव। बाप यानी हृदय के रहते वह पढ़ता-लिखता था, पर ठीक पढ़ाई नहीं हुई। नीरू की जब हृदय से शादी हुई, तो नीरू ने उसे थोड़ा बहुत पढ़ाया था। नीरू अच्छा पढ़ा नहीं सकती, पर किस्सा अच्छा कहती है। उन दोनों के बंधन की पहली गांठ वहीं पड़ी। वीरेन ने पाठशाला की पढ़ाई खत्म की। दरजा तीन में पढ़ता है। किताब कम नहीं। नारायण ने फिर से उसे दूसरी पोथी शुरू कराई है। इससे वह बहुत खीजा है। कहा, नहीं मामा। पुरानी किताब क्यों पढ़ूंगा? मामा ने बहुतेरा समझाया। वह अनमना-सा ही पढ़ता। हठात् नारायण ने उसे छुट्टी दे दी। कहा, आज रहने दो। वीरेन की जान में जान आई। वह मां के पास जाकर बैठा। मां, कहानी कहो। नीरू ने कहा, पढ़ाई इतने में ही खत्म हो गई? वीरेन ने कहा, हां, एक पन्ना पढ़ लिया—"कभी किसीको बुरी बात न कहो। कभी किसीसे ईर्ष्या न करो। झूठ बोलना बहुत बड़ा पाप है। जो झूठ बोलता है, उसपर कोई विश्वास नहीं करता।" सब पढ़ लिया। मामा ने तब कहा, छुट्टी। नीरू ज़रा चुप रही। फिर बाहर निकली। नारायण आंगन में चुपचाप खड़ा पेड़ की फुनगी की तरफ देख रहा था। नीरू ने आवाज दी, नारायण भैया! नारायण ने मुड़कर देखा। कहा, कहो। नीरू ने कहा, दिमाग अभी तक ठण्डा नहीं हुआ? हम लोगों को अथाह में मत छोड़ देना। उस, उस बच्चे के बारे में सोचो। नारायण ने एक लम्बा निःश्वास फेंककर कहा, नीरू, दिमाग को ठण्डा करना चाहता हूं, होता नहीं है। नीरू चुप रही। जवाब ढूंढ़े नहीं मिला। हठात् बोली, एक काम करो न नारायण भैया। नारायण ने कहा, क्या?—मैं बल्कि चली जाती हूं। टोककर नारायण ने कहा, नहीं। उसका गला गंभीर और सख्त था। फिर ज़रा सोचक

मैंने भी देखा। कौन है वह? नारायण ने कहा, वह वीरेन की, मेरे भानजे की मां है। भूतनाथ ने कहा, सौतेली मां? तुम्हारी कौन है? बहन की सौत बहन नहीं होती। नारायण को तुरन्त कोई जवाब नहीं मिला, उसके बाद बोला, वह मेरी छोटी मौसी की पाली हुई लड़की है। भूतनाथ ने कहा, हां-हां, पाली हुई लड़की! मौसेरी बहन नहीं। तुमसे भी उसकी शादी हो सकती थी। नारायण चुप हो गया। सच ही इस बात का जवाब नहीं। भूतनाथ ने कहा, सुनो गुसाईं, उस स्त्री के साथ तुम्हारा एक घर में रहना नहीं चल सकता। समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। सुनो, उसे ले आए हो, अलग घर में रखो। मैं घर देता हूं। सुना है, वह पढ़ी-लिखी भी है। मैं लड़कियों की एक पाठशाला खोल देता हूं। वह पढ़ाए। लेकिन यह सब नहीं चल सकता।

घृणा और क्रोध से नारायण अधीर हो उठा था। उस समय उसके मन के सामने विश्व-ब्रह्मांड तुच्छ और क्षुद्र हो उठा था। वह बोला, मैं समाज को नहीं मानता। आपकी बात भी मैं समझता हूं। मैं नफरत करता हूं। नफरत करता हूं। सुनिए, अपने जीते-जी मैं उसे बाघ और सांप के मुंह में नहीं छोड़ दे सकता। आपसे जो बने कीजिए।—कहकर वह हनहनाता हुआ चला गया।

नील ने सब कुछ सुनकर कहा, इसी बीच तुम अपनी बात भूल गए नारायण भैया? नारायण की भौंहें सिकुड़ गईं। बोला, कौन-सी बात? नील ने कहा, आते वक्त गांव में पहुंचते समय तुम मुझे देख रहे थे। मैंने कहा, देखना नहीं चाहिए। मत देखो। तुमने कहा था, गांव के लोग देखेंगे और देखकर क्या कहेंगे, यही सोच रहा हूं। मैंने कहा था, कहें सो कहें। यह तो जानी हुई बात है। वीरेन नहीं रहा होता तो मैं तुम्हें बर्दाश्त करने को नहीं कहती, मैं भी बर्दाश्त नहीं करती। तुम्हें रिहाई देकर चली जाती। लेकिन वीरेन, वह तुम्हारा है, वह मेरा है। उसके लिए जो सहना होगा, मैं सहूंगी। तुम भी सहो। नारायण ने एक लम्बा निःश्वास फेंकते हुए कहा, सहेंगे, सहना नील!—और उठकर उसने जाकर सिर पर एक

लोटा पानी उड़ेला—अगहन की उस रात में। थोड़ी-थोड़ी सर्दी पड़ने लगी थी। उसके बाद एक लोटा पानी पीकर वह वीरेन को पढ़ाने बैठ गया। वीरेन की उम्र नौ साल की हो चुकी थी, पर देखने में दुबला था, छोटा। चेहरा मां जैसा, कुछ-कुछ नारायण से मिलता-जुलता।

बुद्धि खूब तेज़ नहीं थी, पर बड़ा मीठा स्वभाव। बाप यानी हृदय के रहते वह पढ़ता-लिखता था, पर ठीक पढ़ाई नहीं हुई। नीरू की जब हृदय से शादी हुई, तो नीरू ने उसे थोड़ा बहुत पढ़ाया था। नीरू अच्छा पढ़ा नहीं सकती, पर किस्सा अच्छा कहती है। उन दोनों के बंधन की पहली गांठ वहीं पड़ी। वीरेन ने पाठशाला की पढ़ाई खत्म की। दरजा तीन में पढ़ता है। किताब कम नहीं। नारायण ने फिर से उसे दूसरी पोथी शुरू कराई है। इससे वह बहुत खीजा है। कहा, नहीं मामा। पुरानी किताब क्यों पढ़ूंगा? मामा ने बहुतेरा समझाया। वह अनमना-सा ही पढ़ता। हठात् नारायण ने उसे छुट्टी दे दी। कहा, आज रहने दो। वीरेन की जान में जान आई। वह मां के पास जाकर बैठा। मां, कहानी कहो। नीरू ने कहा, पढ़ाई इतने में ही खत्म हो गई? वीरेन ने कहा, हां, एक पन्ना पढ़ लिया—"कभी किसीको बुरी बात न कहो। कभी किसीसे ईर्ष्या न करो। झूठ बोलना बहुत बड़ा पाप है। जो झूठ बोलता है, उसपर कोई विश्वास नहीं करता।" सब पढ़ लिया। मामा ने तब कहा, छुट्टी। नीरू ज़रा चुप रही। फिर बाहर निकली। नारायण आंगन में चुपचाप खड़ा पेड़ की फुनगी की तरफ देख रहा था। नीरू ने आवाज़ दी, नारायण भैया! नारायण ने मुड़कर देखा। कहा, कहो। नीरू ने कहा, दिमाग अभी तक ठण्डा नहीं हुआ? हम लोगों को अथाह में मत छोड़ देना। उस, उस बच्चे के बारे में सोचो। नारायण ने एक लम्बा निःश्वास फेंककर कहा, नीरू, दिमाग को ठण्डा करना चाहता हूं, होता नहीं है। नीरू चुप रही। जवाब ढूंढ़े नहीं मिला। हठात् बोली, एक काम करो न नारायण भैया। नारायण ने कहा, क्या?—मैं बल्कि चली जाती हूं। टोककर नारायण ने कहा, नहीं। उसका गला गंभीर और सख्त था। फिर ज़रा सोचकर नीरू ने कहा, तो

फिर चलो, हम लोग इस गांव से चले जाएं। नारायण ने इस बार भी—
बाधा दी—नहीं। दो-एक बार पायचारी करके बोला, इतनी हार मैं नहीं
मान सकता। दूसरे दिन सवेरे उसे देखकर नीरू ने कहा, तुम्हारी आंखें
लाल हो आई हैं नारायण भैया! रात तुम ठीक से सोए नहीं। क्यों?

उनकी आंखों का लाल होना तभी से शुरू हुआ।

गुसाईं ने कहा, अगहन और पूस का आधा, इस बीच नारायण
बहुत कुछ शान्त हुआ था। कोई घटना नहीं हुई। विश्वबंधु ने खत
लिखा—झगड़े को बढ़ाओ मत। मैं जाऊंगा। मिटा देने की कोशिश
करूंगा। धीरज मत खोओ। महात्माजी की ओर ताककर देखो।"
विश्वबंधु उच्चपदस्थ सरकारी कर्मचारी होने को था। उसके योग्य थी
चिट्ठी। वह हंसा। लेकिन नीरू ने कहा, क्यों? क्या बुरा लिखा है?
उसने कहा, जरा-सा, ज्यादा नहीं, जरा-सा अन्याय है। नीरू ने खीजकर
कहा, क्या? सुनूं तो? नारायण ने बताया, महात्माजी महात्माजी हैं।
मैं नारायण हूं। दुनिया मे बेकार। पाठशाला की गुरुआई गई। अब धान
के दिन। धान काटना हूं। दो फसल लगाना हूं अपने हाथों। इसके बाद
क्या करूंगा, यही सोचता हूं। भला महात्मा को देखकर मैं धीरज का
सबक ले सकता हूं?

तो भी वह धीरज धरे था। किसीके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं किया।
सबसे कतराकर ही चलता। झील के किनारे ज्यादा बैठने लगा। मगर
चिड़िया मारने पर भी कुछ नहीं बोलता, चुप बैठा रहता है। गोली खाकर
चिड़िया ऊपर से गिरती, वह देखता। उसने समझा, मान लिया कि
आदमी की गोली से मरने के लिए ही उनकी सृष्टि हुई है। गोली से डैने
और पांव टूटी तीन बत्तखों को वह उठाकर घर ले गया है। हलदी-चूना
लगाकर दो को बचा लिया है। बांस के एक पिंजड़े में रख दिया है। उन्हें
लेकर दिनभर अनमना रहता है। वही उन्हें खिलाता है। इस बीच उसकी
आंखों की लाली बहुत कुछ छट गई। सर में पीड़ा होती थी, वह
भी कम हो गई है।

उस दिन सरस्वती-पूजा थी। कोस-भर की दूरी पर के साहा लोग सम्पन्न हैं। उन्होंने इस वार सरस्वती-पूजा का आयोजन किया था। वह भी काल की हवा। गांव में ब्राह्मणों की सरस्वती-पूजा होती है। पिछले साल साहा के यहां के लड़कों ने अंदर जाकर ब्राह्मण के लड़कों के साथ पुष्पांजलि देना चाहा था। लेकिन ब्राह्मणों ने नहीं देने दिया। इस बार साहा ने अपने यहां पूजा की तैयारी की। उन लोगों ने नारायण को पूजा कराने के लिए चिट्ठी दी। वहां के ब्राह्मण तैयार नहीं हुए। नारायण को बहुत अच्छा लगा। उसने उत्साह के साथ न्योता स्वीकार किया। भोर ही में उठकर वह वहां चला गया। पूजा कराके संध्या की आरती कराकर घर लौटा, तो आंगन में कदम रखते ही उसे काठ मार गया। नीरू ओसारे पर औंधी पड़ी थी। उसके सिर के पास वैठकर विपिन की मां ने कहा, उठो बिटिया, उठो। दिन-भर खाया नहीं। उपवास करके यों पड़ी रहकर क्या करोगी? —वीरेन एक ओर मानो शोकार्त-सा पड़ा था।

नारायण कुछ देर तक चुपचाप देखते रहकर भी कुछ समझ नहीं सका। विपिन की मां ने कहा, आओ वेटा! देखो जरा। हमें पता होता, तो मना करती। पर···

नारायण ने कहा, क्या हुआ?

उसका गला सुनते ही नीरू विजली छुई-सी चौंककर उठ वैठी। कहा, मैंने कहा था—चलो, चलो, यहां से भाग चलो। नहीं गए। हुई न, मनोकामना पूरी हुई!

—क्या हुआ?—नारायण ने अकुलाए और उत्तप्त गले से पूछा।

—यह देख लो, क्या हुआ।—नीरू ने अपना कपाल दिखाया। वह चोट का निशान दगदग कर रहा था। विपिन की मां ने कहा, हमारे आने के पहले लोढ़े से ठोंका है वेटा!

नारायण ने गरदन को झटका देकर ज़ोर से पूछा, क्यों? क्या हुआ?

तीखे और रूखे गले से नीरू पूछ वैठी, मैं वेश्या हूं? वेश्या? मैं···। वह और नहीं बोल सकी। हो-हो करके रो पड़ी और फिर लोट गई।

विपिन की मां ने कहा, वीरेन ने सरस्वती-पूजा की जगह जाने की जिद पकड़ी थी। नीरू ने जाने नहीं दिया। लेकिन मौका देखकर वीरेन चुपके से चला गया। पुष्पांजलि देगा। वह जाकर ब्राह्मणों के लड़कों के साथ बैठा था। उसे उठा दिया—जा, कमरे से बाहर जा। उन छोटी जातवालों के साथ वहां खड़ा रह। कान भी मल दिया था। वीरेन रोता हुआ घर लौटा। नीरू ने जब उसे नहीं देखा, तो वह हड़बड़ाकर बाहर निकली। वहीं पूछा, क्या हुआ? वीरेन बोल नहीं पाया। किंतु उसके साथ बाउरी लड़के आ रहे थे कई। उनमें से एक ने कहा, अजी, यह पूजा करने गया था, मगर उसका कान पकड़कर लोगों ने उसे खींचकर हम लोगों के साथ खड़ा कर दिया। कहा, जा, तू ब्राह्मण नहीं है। पूजा तुझे यहां नहीं करने देंगे। इसीलिए वह रोता हुआ…

नीरू की खोपड़ी जल्द नहीं उठती, परंतु उस दिन वह सह नहीं सकी—माथे में आग लग गई—हो सकता है, कपाल की आग माथे में लग गई। उसने वीरेन का हाथ पकड़ा और दनदनाती हुई सरस्वती-पूजा की जगह जाकर खड़ी हो गई। बिल्कुल सामने जाकर बोली, किसने, किसने मेरे लड़के को पूजा नहीं करने दी? कान पकड़कर नीचे उतार दिया। क्यों? क्यों उतार दिया? उस समय उसे होश नहीं था। सर पर का कपड़ा खिसक गया था, आंखें जल रही थीं—खुले मुंह वह खड़ी थी। सबई-गांव की लड़की नहीं, शहर की। उसे देखकर लोग हैरान ही नहीं रह गए, उस सवाल का जवाब भी उनसे देते नहीं बना।

अचानक एक सख्त और भारी गला सुनाई पड़ा, नीचे उतरो। उतरकर नीचे खड़ी हो।—कहते-कहते बगल के एक कमरे से बाहर निकल आया भूतनाथ बाबू। उसे देखकर नीरू को चैन हुआ। माथे के कपड़े को खींचकर फिर आंखों उसकी ओर देखती हुई बोली, क्यों? यह पूजा तो गांव के सब लोगों की है, किसी खास आदमी की नहीं।

—हां। गांव के हिंदुओं की। पतित की नहीं, सोनागाछी, रामबगान की वेश्याओं की नहीं। उतर, उतर यहां से!

उस डपट के सामने नीरू खड़ी नहीं रह सकी। वह मानो एक कठोर प्रहार हो। वहां खड़े लोगों की दो-दो आंखें मानो हज़ारों धिक्कार से धिक्कारने लगीं—भागकर वह घर चली आई; ज़मीन पर बैठी और लोट गई। एक बार सर ठोंक लिया। कपाल फूट गया। एक घूंट पानी तक नहीं पिया, ऐसे ही पड़ी है। औंधी पड़ी रो रही है।

नारायण के माथे की बुझी हुई आग फिर दप् से जल उठी। हाथों का सामान वहीं फेंककर वह तुरत दौड़ पड़ा।

विपिन की मां ने पुकारा, नारायण! नारायण! अरे ओ बेटे! मगर उसने नहीं सुना। उसी वक्त लेकिन नीरू उठ खड़ी हुई थी। क्यों उठी, वही जाने। उठते ही वह बेहोश होकर धड़ाम से गिर पड़ी।

वीरेन ज़ोरों से चीखकर रो पड़ा था, मां! ऐ मां!

नारायण लौट आया। नहीं लौटता तो उसी दिन, उसी सांझ को नारायण मरता। घटना ऐसी नहीं होती।

गहरी रात तक नारायण जगा बैठा था। माथे में आग लग रही थी। असह्य पीड़ा। चिंताएं मिलकर मन में एक वज्रपिंड बन गई थीं। सारी कल्पनाएं पंगु हो गईं—सबकी सब एक संकल्प, एक आकार-अवयव-हीन संकल्प में बदल गईं—'खून! उसका खून करूंगा, बस! नीरू भी दूसरी ओर बैठी थी। काठ की मारी-सी। गोया इस घर में अभी-अभी कोई मरा है। उसका दाह-संस्कार करके लौटकर दोनों बैठे हैं। वीरेन सो गया था।

कर्कश कंठ से उल्लू बोल गया। दूर खेतों में स्यार बोल उठे। नारायण निःश्वास छोड़कर ज़रा हिलकर बैठा। बोला, इसका बदला मैं लूंगा नीरू, उसके लहू से मैं इसका बदला चुकाऊंगा। दुःशासन की छाती का लहू लेने जैसा। मैंने शपथ ली। उठो, सो जाओ जाकर।

नीरू उठी। सोते वीरेन को गोदी में उठाकर अकंपित स्वर में बोली, उस रोज़ मैं अपने-आपको तुम्हारे पैरों तले लुटा दूंगी।—वह अंदर चली गई।

नारायण ने बार-बार गरदन हिलाई—नहीं···नहीं···नहीं।

५

—पानी !—गुसाईं ने कहा—पानी। मैंने कहा, है तो। गुसाईं ने जग उठाकर सलग से पानी पिया। फिर बोला, इसके बाद और कुछ याद नहीं। माथे में पीड़ा—हरदम पीड़ा, आंखों में जलन—आंखें सुर्ख—मन चंचल—छाती के अन्दर एक न सहा जा सकनेवाला उद्वेग। हां, उद्वेग के सिवा क्या कहूं ? सिर्फ वही एक चिन्ता। समय के साथ सब कुछ कम जाता है। लेकिन नारायण का कम नहीं हुआ। बढ़ा। चार महीने—माघ, फागुन, चैत, बैसाख ! चार महीने…।

गुसाईं रुका। कहा—न, एक बात याद आई, कहनी होगी। हां, कहनी पड़ेगी। नहीं तो नारायण को नहीं समझ सकेंगे। नारायण के जोर को नहीं समझ सकेंगे।

नीरू ने उस दिन कहा था, जिस दिन तुम लहू से इसका बदला लोगे, उस दिन मैं तुम्हारे पैरों तले अपने को लुटा दूंगी। नारायण ने उसी दम गरदन हिलाकर कहा था, नहीं, नहीं, नहीं। इसको उसने परम सत्य साबित किया था। नीरू उसके भानजे बीरेन की मां बनी थी। नारायण ने एक बार के लिए भी उसकी दूसरी कल्पना नहीं की थी। बातों में उसने भूलकर भी कभी इस सीमा का उल्लंघन नहीं किया। गुसाईं आंखों हरगिज कभी उसकी ओर नहीं ताका। झील की शोभा, चिड़ियों की मीठी चुहू-चुहू उसके कानों में नहीं पैठती। खेतों में अपने हाथों फसल लगाई थी, उसका हवाईदार या मजदूर होने में लोगों को आफत थी—उसने किसीको नहीं

बुलाया। और फिर, कुल अपना ही होगा, इसलिए भी उसने खुद ही जोता-बोया। देखभाल नहीं होने से फसल मर गई। वीरेन को पढ़ाना छोड़ दिया। बोलना उसे अच्छा नहीं लगता। बदले की भावना से आदमी उन्मद होता है, वही हुआ था वह। उसका सम्मान छीनकर उसने उसके माथे पर लात मारी है; नीरू के नारीत्व का चरम अपमान करके उसके कलेजे में छुरा घोंपा है। इस मार्मिक पीड़ा से पागल हो जाना ही स्वाभाविक है। लेकिन हुआ नहीं, इस बीच उसने और एक ज़ोर पाया। नीरू पर लोभ रहा होता, तो यह ज़ोर नहीं मिलता। नीरू को महज़ वीरेन की मां मान लेने के साथ ही साथ उसने मन में यह अनुभव किया कि इस सताए गए इलाके का हर सताया हुआ आदमी प्रतिकार के लिए उसकी ओर ताक रहा है। गांव के लोग—बहुत ही कम पढ़े-लिखे। नारायण ने रोज़ ही भगवान को पुकारना शुरू किया। मुझे बल दो भगवान। मुझे वर दो, मैं उसे मारूं। यहीं नहीं, कुछ ही दिनों में उसके पास लोग आने लगे। रूपलाल, फेला मंडल, किस्टो दास, भूषण पाल। बोले, हम लोग भी मौके की ताक में हैं। ठाकुर, तुम भी आना। लेकिन वह नहीं गया। उन लोगों को वह जानता है, पहचानता है। उन लोगों में भूतनाथ से कोई फर्क नहीं। भूतनाथ ने उन्हें लथेड़ दिया है, इसीलिए वे लोग भूतनाथ के दुश्मन हैं। मेल एक ही बात में है कि वे भी सताए हुए हैं, यह भी सताया हुआ है। लेकिन हां, उन लोगों के हत्या के मनसूबे उसने सुने हैं। तरह-तरह के मनसूबे गांठते हैं वे। भूतनाथ शराब पीता है। शराब चुलाकर उसमें ज़हर मिलाकर उसके पास भेजने की सोचते हैं। सांप को पकड़कर बांस के चोंगे में भरकर गहरी रात में खिड़की की राह उसके विलास-महल में छोड़ देने की सोच रहे हैं। और भी अजीब-अजीब कुछ। तंतर-मंतर, जादू—यह सब भी किया। लेकिन नारायण से तो यह सब नहीं होगा। वह उसके आमने-सामने डटेगा। हथियार उठाकर कहेगा, लो, बदला, बदला, बदला।

तीन महीने तक नारायण उसके पीछे-पीछे घूमा। भूतनाथ अपने पहरे-

दोनों के साथ आगे चलता, वह चलता उसके पीछे, बाईं ओर से—जरा दूर हटकर जंगल-झाड़ी की आड़ से। नदी वहां पर जरा आंकी-बांकी हो गई है—वह सूखी नदी में उतरकर किनारे-किनारे उसके पास-पास ही छिपकर चलता। भूतनाथ झील के किनारे जाता, नारायण झील के घास-वन में इन्तजार करता रहता। वह उसे अकेला पाना चाहता—आमने-सामने। उनके साथ होता उसका वह संगी बीछा बागदी। बीछा बागदी कुछ मामूली नहीं है। अकेले वह दो जने से कैसे निबटेगा? कभी वह नदी के इस पार से जाता, नारायण उस पार से। सेंध काटकर रात में सोते समय मारना—नारायण से यह भी नहीं होने का।

यह पीछा रात में ही करता। दिन में नहीं। दिन में सोचता। हर रोज की नाकामयाबी को सोच देखता, क्यों नहीं हो सका। नीरू भी स्तब्ध और म्रियमाण हो गई थी। हंसी नहीं थी, ठट्ठा-मजाक नहीं। दिन में किसी भी घड़ी उसकी चाल में जरा-सी चंचलता—सो भी नहीं दिखाई पड़ती। वीरेन को किस्सा सुनाते-सुनाते थम जाती। वीरेन भी कुछ-कुछ समझता था। बीच-बीच में आकर कहता, मां, वे लोग कह रहे थे। नीरू कहती, कहने दो। वीरेन चुप हो जाता। बीच-बीच में खबर मिलती, कोई घर के पास से कह जाता—आज रात में। किसी दिन कोई पांच बात कहकर कहता, आज रात को दावत होगी। जाना, हां। वे टोह लगाते। नारायण ठीक अपनी राह चलता। लेकिन, पता चलता, मनसूबा बेकार हो गया। रात के बाघ-पुराण का निशाचर अपनी राह निकल गया। नारायण अपना ओठ पकड़कर खींचता, नोचता। उसके बाद, एक रोज...

—आः!—चौंक उठा गुसाईं। मैंने पुकारा, गुसाईं। गुसाईं! गुसाईं ने कहा, हां, कभी-कभी ऐसा होता है। नहीं तो मेरे मन में तो कोई अफसोस नहीं है, कोई खेद नहीं। कुछ भी नहीं है।

हां, उस दिन अन्धेरिया रात थी। वह अपने प्रमोद-भवन को जा रहा था। बैसाख महीने की रात। शाम को जोरों की आंधी आ चुकी थी। हल्की बूंदाबांदी। आंधी के बाद वह निकला। मैंने नदी के किनारे से

उसका पीछा किया। चलने लगा, वह आगे-आगे जा रहा था—बड़े दंभ के साथ कदम बढ़ा रहा था। डर नहीं था उसे। वीर वह था। असुर जैसा वीर, विक्रमशाली। उस दिन फंदे में पड़ गया। रूपलाल की पूरी जमात जहां छिपी हुई थी, ठीक वहीं जा पड़ा। वह मेरी जमीन का वही टुकड़ा था, जिसके लिए मैं आया हूं। जैसे ही वह वहां पहुंचा कि चारों ओर से उन लोगों ने उसे घेर लिया। वह डपट उठा—कौन है? किसीने जवाब दिया—यम। वह हा-हा करके हंस उठा। उसका संगी बीछा बागदी लाठी तानकर खड़ा हो गया। किसीने पीछे से गंड़ासा मारा। गंड़ासा बीछा के कंधे में धंस गया। वह गिर पड़ा। किसीने उसकी छाती पर पांव रखकर उसे दबोचा। भूतनाथ को फिर भी खौफ नहीं था। वह हाथ में बंदूक नहीं रखता था। रखता था एक गुप्ती। उसे खींचकर खड़ा हो गया—आ जा! लेकिन जो भी हो, मैं ब्राह्मण हूं—यह वैशाख का महीना है, याद रखना। उस समय तक भी वह हंसी कर रहा था। आ जा! नतीजा भी निकला। वैशाख का महीना और वह ब्राह्मण। कौन वार करे? नारायण तब तक आ पहुंचा। दाव को सख्त मुट्ठी से थामकर वह आगे बढ़ा—मैं! भूतनाथ चौंका। चेहरा फक हो गया। शायद मेरे जैसे किसी निर्दोष पर उसने मेरे जैसा अत्याचार नहीं किया।

उसके बाद याद नहीं। मेरे दाव उठाते ही बहुत-से दाव उठ आए। एक ही साथ सबके वार हुए। अगर मेरा दाव पहले लगा हो, वही हुआ—तब तो मैं वीर हूं—अपने तप में मैं सफल हुआ। लेकिन वह बड़ी भयंकर घड़ी थी। बहुत ही भयंकर। मैंने मानो महाकाल को साक्षात् देखा। काल दैत्यों की, असुर की सृष्टि करता है, उन्हें वर देता है, और वे उसी वरदान के बल पर चोटों से सृष्टि को जर्जर किए देते हैं। वैसे में महाकाल चिर-काल के धर्म से जगता है—साथ ही साथ आदमी जगता है। वह जब दैत्यों का, असुरों का नाश करता है, तो आदमी उसके साथ नाचता है। बहुत लोग मिलकर जब किसीका ध्वंस करते हैं, तो वह ईश्वरीय दण्ड से दण्डित होता है, ऐसे में हत्या करनेवाले मनुष्य नहीं हैं, शक्ति है। महाशक्ति ने महिपा-

सुर का इसी तरह से वध किया था।

नारायण यही कहता है, गुसाईं ने कहा। नारायण भी उस दिन नाचा था। वह भी महाकाल के अनुचर जैसा भयंकर हो उठा था। ठीक-ठीक होश नहीं था। होश होता तो दौड़कर सोई नीरू को खींच लाकर यह नहीं दिखाता। लहू-लुहान हाथों ही उसने नीरू को जगाया—उठो। चलो। उसकी वह मूर्ति देखकर नीरू ने भय-विह्वल होकर कहा, कहां ? वह बोला, असुर की बलि हुई है। देखना, चलो। उस भयावनी मूर्ति के आगे नीरू मूक हो गई, खिलौना-सी हो गई। अंधेरी रात, रास्ता लम्बा था और शाम की आंधी से अस्तव्यस्त हो गया था, उसी रास्ते से वह पुतला-सी उसके पीछे लग गई। न तो बोलने जैसा मन रह गया था, न ही उसकी चेतना रह गई थी।

—वह देखो ! नीरू देखकर चीखना चाह रही थी, नहीं चीख सकी। वह विशाल शरीर आदमी टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ा था। क्या हुआ है यह, नारायण अब यह भी देख रहा था। ओह् ! आदमी का आक्रोश भी क्या होता है ! उसका चेहरा देखकर वह सिहर उठा। नीरू को खींचकर बोला, चलो। चलो। एक अजीब वीभत्स, अश्लील दृश्य। कहा नहीं जा सकता। कहना चाहकर भी नारायण नहीं कह सकता। नहीं कह सकता।

नीरू को लेकर वह लौटा। घर लौटकर नीरू फफककर रो उठी। बोली, तुम कितने खौफनाक हो नारायण भैया ! ओः ! नारायण अवाक रह गया। ठीक वक्त पर किसीने दीवार के उस पार से कहा, रोओ मत रघुरानन ! मुंह सीकर चुप रहो। नहीं तो ठाकुर को फांसी हो जाएगी। जाओ, हाथ-पांव, कपड़े-लत्ते अच्छी तरह धो लो। उन सबको जाकर झील में गाड़ दो।

कौन था वह, नारायण को आज भी मालूम नहीं। नीरू चुप हुई कि पत्थर हो गई।

कैदखाने में ये आंखें साफ हो आई थीं, माथे की पीड़ा कम हो गई

थी। कई दिनों के बाद पुलिस ने नारायण वगैरह का चालान किया। रूपलाल, फेला मंडल, किस्टोदास, भूषण पाल, नारायण—पूरा एक दल। हां, एक बात कहना भूल गया। उस रात के सवेरे नारायण ज़रा श्रांत और उद्विग्न मन लेकर जगा था—लेकिन ग्लानि उसे नहीं थी। पुलिस ने लाश को शहर भेज दिया। भूतनाथ के अपने लोग नहीं गए। उन्होंने कुशपुत्तली या क्या सब तो किया। मर्ग से भूतनाथ की लाश लेकर जिन लोगों ने संस्कार किया था, उनमें नारायण था। दाह-संस्कार करके वह मन ही मन बोला—मैंने तुम्हें मुक्ति दी। हंसकर गुसाईं ने कहा, इसे आप नारायण की सफाई कहें, मैं एतराज़ नहीं करूंगा। खैर। पुलिस ने चालान किया। मजिस्ट्रेट के इजलास में, सेसंस कोर्ट में मुकदमा चला। वहां नारायण ने कहा, मैं निर्दोष हूं। यह उसने हृदय से ही कहा था। तीन जनों को आजीवन कालेपानी की सज़ा हुई। नारायण, रूपलाल और भूषण को। बाकी सब बेदाग छूट गए। नारायण डिगा नहीं। उसने खुशी-खुशी सज़ा कबूल की। वीरेन और नीरू के लिए नहीं सोचा। नीरू ने यही चाहा था। वह इसलिए खुशी-खुशी कालेपानी की सज़ा भोगेगा। और नीरू, अनगिनती असहाय मांएं अपनी सन्तान को छाती से लगाए जैसे रहती हैं, वैसे ही रहेगी। नीरू भी भेंट करने नहीं आई। मुकदमे में रूपलाल वगैरह ने वकील रखा था—उसके लिए सरकार की तरफ से वकील दिया गया था। लेकिन रूपलाल आदि ने अपील की। उसे भी दस्तखत बनाने को कहा गया। उसने भी सही बनाई। कुल मिलाकर पांच महीने। पांच महीने के बाद सभी लोग बेकसूर छूट गए। जब जेल से लौटा, तो नारायण की आंखें साफ हो गई थीं। वह घर आया।

घर खाली पड़ा था। ताला बंद। उसने पुकारा, विपिन भैया। भिक्षा-मां! विपिन बाहर आया। कुछ बोला नहीं, उसकी तरफ ताका नहीं—सामने की तरफ टुकुर-टुकुर ताकता रहा। उसके पास जाकर नारायण ने आवाज़ दी, विपिन भैया! नीरू-वीरेन कहां हैं? विपिन भैया!

विपिन की आंखों से आंसू बह निकले। नारायण ने फिर पागल की

र का इसी तरह से वध किया था।

नारायण यही कहता है, गुसाईं ने कहा। नारायण भी उस दिन नाचा था। वह भी महाकाल के अनुचर जैसा भयंकर हो उठा था। ठीक-ठीक होश नहीं था। होश होता तो दौड़कर सोई नीरू को खींच लाकर यह नहीं दिखाता। लहू-लुहान हाथों ही उसने नीरू को जगाया—उठो। चलो। उसकी वह मूर्ति देखकर नीरू ने भय-विह्वल होकर कहा, कहां? वह बोला, असुर की बलि हुई है। देखना, चलो। उस भयावनी मूर्ति के आगे नीरू मूक हो गई, खिलौना-सी हो गई। अंधेरी रात, रास्ता लम्बा था और शाम की आंधी से अस्तव्यस्त हो गया था, उसी रास्ते से वह पुतला-सी उसके पीछे लग गई। न तो बोलने जैसा मन रह गया था, न ही उतनी मना रह गई थी।

—वह देखो! नीरू देखकर चीखना चाह रही थी, नहीं चीख सकी। वह विशाल शरीर आदमी टुकड़े-टुकड़े होकर पड़ा था। क्या हुआ है यह, नारायण अब यह भी देख रहा था। ओह्! आदमी का आक्रोश भी क्या होता है! उसका चेहरा देखकर वह सिहर उठा। नीरू को खींचकर बोला, चलो। चलो। एक अजीब वीभत्स, अश्लील दृश्य। कहा नहीं जा सकता। कहना चाहकर भी नारायण नहीं कह सकता। नहीं कह सकता।

नीरू को लेकर वह लौटा। घर लौटकर नीरू फफककर रो उठी। बोली, तुम कितने खौफनाक हो नारायण भैया! ओः! नारायण अवाक रह गया। ऐन वक्त पर किसीने दीवार के उस पार से कहा, रोओ मत ठकुराइन! मुंह सीकर चुप रहो। नहीं तो ठाकुर को फांसी हो जाएगी। जाओ, हाथ-पांव, कपड़े-लत्ते अच्छी तरह धो लो। उन सबको जाकर झील में गाड़ दो।

कौन था वह, नारायण को आज भी मालूम नहीं। नीरू चुप हुई कि पत्थर हो गई।

कैदखाने में ये आंखें साफ हो आई थीं, माथे की पीड़ा कम हो गई

थी। कई दिनों के बाद पुलिस ने नारायण वगैरह का चालान किया। रूपलाल, फेला मंडल, किस्टोदास, भूपण पाल, नारायण—पूरा एक दल। हां, एक वात कहना भूल गया। उस रात के सवेरे नारायण ज़रा श्रांत और उद्विग्न मन लेकर जगा था—लेकिन ग्लानि उसे नहीं थी। पुलिस ने लाश को शहर भेज दिया। भूतनाथ के अपने लोग नहीं गए। उन्होंने कुशपुत्तली या क्या सब तो किया। मर्ग से भूतनाथ की लाश लेकर जिन लोगों ने संस्कार किया था, उनमें नारायण था। दाह-संस्कार करके वह मन ही मन वोला—मैंने तुम्हें मुक्ति दी। हंसकर गुसाईं ने कहा, इसे आप नारायण की सफाई कहें, मैं एतराज़ नहीं करूंगा। खैर। पुलिस ने चालान किया। मजिस्ट्रेट के इजलास में, सेसंस कोर्ट में मुकदमा चला। वहां नारायण ने कहा, मैं निर्दोष हूं। यह उसने हृदय से ही कहा था। तीन जनों को आजीवन कालेपानी की सज़ा हुई। नारायण, रूपलाल और भूषण को। वाकी सब वेदाग छूट गए। नारायण डिगा नहीं। उसने खुशी-खुशी सज़ा कबूल की। वीरेन और नीरू के लिए नहीं सोचा। नीरू ने यही चाहा था। वह इसलिए खुशी-खुशी कालेपानी की सज़ा भोगेगा। और नीरू, अनगिनती असहाय मांएं अपनी सन्तान को छाती से लगाए जैसे रहती हैं, वैसे ही रहेगी। नीरू भी भेंट करने नहीं आई। मुकदमे में रूपलाल वगैरह ने वकील रक्खा था—उसके लिए सरकार की तरफ से वकील दिया गया था। लेकिन रूपलाल आदि ने अपील की। उसे भी दस्तखत बनाने को कहा गया। उसने भी सही बनाई। कुल मिलाकर पांच महीने। पांच महीने के वाद सभी लोग वेकसूर छूट गए। जब जेल से लौटा, तो नारायण की आंखें साफ हो गई थीं। वह घर आया।

घर खाली पड़ा था। ताला वंद। उसने पुकारा, विपिन भैया। भिक्षा-मां! विपिन बाहर आया। कुछ बोला नहीं, उसकी तरफ ताका नहीं—सामने की तरफ टुकुर-टुकुर ताकता रहा। उसके पास जाकर नारायण ने आवाज़ दी, विपिन भैया! नीरू-वीरेन कहां हैं? विपिन भैया!

विपिन की आंखों से आंसू वह निकले। नारायण ने फिर पागल की

तरह झकझोरकर उसने पूछा, वि-पिन-भैया !

विपिन ने कहा, नहीं हैं !

नहीं हैं।—चीख उठा वह।

—वीरेन नहीं रहा। धनुष्टंकार होकर मर गया।

मुकदमे की राय जानने के लिए वह हिरनहाटी स्टेशन गया था। वहां उसने, आजीवन कालेपानी की सजा हुई, यह सुना। तमाम रास्ता रोते-रोते दौड़ता हुआ आया। रास्ते में ठोकर लगी। नाखून उखड़ गया। घर आकर वह भी रोया, नीरू भी रोई। एक दिन के बाद उसका अंगूठा पक गया। साथ ही बुखार आया। धनुष्टंकार। तीसरे दिन चल बसा। नीरू पहले तो छाती पीटकर रोई, फिर पत्थर हो गई। वे लोग पतित हैं। नीरू के नाम बहुत-बहुत अपवाद हैं। उसके बच्चे का दाह-संस्कार करने के लिए कोई नहीं आएगा। भूतनाथ नहीं है। रायों का घर है। कौन आए ? शायद हो कि सबको डर न हो। घृणा ! नारायण ने खून किया है। खूनी है वह।

विपिन ने कहा, दिन-भर कोई नहीं आया। वीरेन का शव लिए नीरू बुत बनी बैठी रही। पहले विपिन भी नहीं आ सका था। आखिर उसे भी तो डर था। आदमी का मन ठहरा। उसे भी ऐसा लगा था कि इतनी दूर तक करना नारायण का ठीक नहीं हुआ। उसे पंगु बनाकर ही छोड़ देता। दोनों ही बात थी। लेकिन जब रात बीत गई, भोर हुआ तो वह आया, बोला, चलो बिटिया ! मेरे नसीब में जो होगा, होगा। चलो, मैं वीरेन को लिए चलता हूं, तुम साथ चलो। क्या किया जाए, चलो। नदी में बहा आएं या माटी कोड़कर समाधि दे आएं। नीरू चुपचाप उसके पीछे-पीछे गई। नदी में बहाया नहीं, नदी-गर्भ में समाधि दे दी। नहा-धोकर वे लौटे। विपिन ने कहा, मेरे घर चलो बिटिया। अकेले उस घर में नहीं रहना होगा। मैं तुम्हें वहां अकेली नहीं रहने दूंगा। नीरू ने चुपचाप वही किया। दिन-भर एक शब्द नहीं बोली, नहीं रोई। रात को वहीं सोई। लेकिन सबेरे उठकर किसीने उसे नहीं देखा। किवाड़ खुले पड़े थे।

विपिन ने खोजा। नदी किनारे, झील के चारों ओर। हिरनहाटी स्टेशन में भी खोजा। नहीं पता चला।

नारायण काठ का मारा-सा सुनता गया। उसके दूसरे ही दिन से उसकी आंखें लाल हो गईं। उसने भी नीरू को बहुतेरा खोजा—नहीं मिली। धूप में, बारिश में, सर्दियों में, ग्रीष्म में—बहुत खोजा। खोजते-खोजते आंखें लहू के ढेले-सी हो गईं। माथे में असह्य पीड़ा।

यह नारायण का रक्त-संकेत है। मेरे पास मत आना। राजनीति करने के इरादे से कुछ दिन शिबू डाक्टर के दल में शामिल हुआ था। परंतु बाढ़ के समय उन लोगों ने खोज-पूछ नहीं की, सबसे पहले श्यामापति बाबू ने खोज की। श्यामापति बाबू से शिबू डाक्टर का विरोध है। सो मैंने शिबू डाक्टर का दल छोड़ दिया। अब मेरा कोई दल नहीं। मैं सिर्फ आदमी हूं। मैंने जो किया, उसके लिए मुझे कोई खेद नहीं। सोचते-सोचते आखिर समझा, ऐसा भूतनाथ आता है, नारायण आता है। यही होता है। शायद हो कि काल का रूप कुछ अदलता-बदलता है। लेकिन नीरू-बीरेन ? बीरेन चला गया! क्या किया जाए, मनुष्य मरता है। पर नीरू ?

मैं सोच नहीं सकता कि नीरू उस दिन मरे बेटे को लिए बैठी रही और कोई नहीं आया। मेरी आंखें इसीलिए कहती हैं, कोई मत आना—कोई मत आना मेरे पास—मैं किसीको नहीं चाहता। ईश्वर मेरे लिए मर गया है, समाज मेरे लिए हृदयहीन है। निष्ठुर। मैं ये लाल आंखें लिए अकेला बैठा हूं। एक ही तसल्ली है कि मैं जूझा। मैंने बदला लिया। मगर इससे जी नहीं भरता।

ज़रा रुककर नारायण ने कहा, विश्वबंधु ने अब बड़ी तरक्की कर ली है—वह मुझे कलकत्ते के मेडिकल कालेज में ले गया था। मेरी आंखें, मेरा माथा दिखलवाया था। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ।

६

हुआ था। वह मैं देख आया हूं। कुछ दिन पहले धनदा बाबू एस० एल० सी० ने फोन किया था।—तुमसे नारायण गुसाईं जरा मिलना चाहता है। चौंककर मैंने कहा, नारायण गुसाईं? धनदा बाबू ने कहा, मेरे यहां है। नीरू की खोज मिली थी, वही आया था। फिर चौंक उठा मैं, नीरू की खोज? बोलते-बोलते छाती धड़क उठी। तो क्या‥अंत तक उधर से धनदा बाबू बोले—कल शाम को उसका दाह-संस्कार करके गुसाईं मेरे यहां आया है। मैंने पूछा, दाह-संस्कार करके? नीरू नहीं रही? धनदा बाबू ने कहा, नहीं। आखिर वह बिलकुल वाहोश गई, सुना। मैंने पूछा, इतने दिनों तक थी कहां? धनदा ने कहा, पागल हो गई थी। प्रायः उन्माद। वहां से कलकत्ता चली आई थी। सीधे दमदम गई थी। उनका वहां घर था, सुना होगा! वहां जाकर वह उसी घर के आस-पास घूमा करती। हाथ में एक हंसिया लिए कहती, खून करके मैं कालापानी जाऊंगी। यह बात कुत्ते से भी कहती, आदमी से भी कहती, पेड़ से भी कहती। अपने पुराने पड़ोसी के घर के बाहर पड़ी रहती। धूल-कादो लगाती। घूमा करती। देने पर खाती, नहीं तो नहीं। उसके बाद कोई पंद्रह दिन पहले तबीयत खराब हुई। पड़ी रहती। कई दिन पहले हठात् होश में आई। उसने विपिन को एक पत्र लिखवाया—नारायण का पता हो तो बताना। मरने से पहले मैं जान जाना चाहती हूं।

चिट्ठी मिली, तो नारायण आया। दो दिन उसकी सेवा की, और

उसका अंतिम संस्कार करके मेरे यहां आया है।

मैं दौड़ा गया। नारायण ने नीरू का पता पाया, पाया मगर मौत की सेज पर। वह संसार को, समाज को क्या शाप देता है, यह सुनने के लिए गया। परंतु अवाक् रह गया। सौम्य-शांत नारायण उदास, प्रसन्न बैठा है।

नारायण ने झट कहा, आइए, आइए। आखिर नीरू का पता मिला, मालूम है?

मैंने कहा, सुना।

वह बोला, मुझे अब कोई शिकायत नहीं रही, समझा? दुःख तो बड़ी बात नहीं—उसने भी दुःख पाया है, बहुत पाया है, मैंने भी पाया है। तो भी उसने भी कोई अन्याय नहीं किया। मैंने भी नहीं किया। बस, इतना ही समझा कि भेंट हो गई, सब कुछ मिल गया। और क्या? लेकिन सुख-शांति पाने से और अच्छा होता। भूतनाथ ऐसा नहीं हो गया होता तो और अच्छा होता। लेकिन सब अच्छा सुख का नहीं होता। युग की एक जो यंत्रणा है, हर युग में मनुष्य को वह पाना जो पड़ता है। जो सह सकता है, मुंह बंद करके जूझ सकता है, वही युग-यंत्रणा की सरहद को पार कर सकता है। तब फिर आंखें लाल नहीं रहतीं, कोई पीड़ा नहीं होती।

एकाएक रुक गया। फिर बोला, लीजिए, अंट-शंट बकने लगा। एक समाचार दूं। सिर की पीड़ा अब नहीं है। और आंखें कुछ-कुछ साफ नहीं हुई हैं? हो जाएंगी। बिलकुल ग्रीन!

मैं लहू के ढेले जैसी उसकी आंखों की ओर ही देख रहा था। खुद से सवाल किया, हुआ क्या? हुआ। नारायण कह रहा है, हो गया।

मुद्रक: शक्ति मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली-३२

1123